प्रवचन मञ्जूषा

भाग-1

प्रवचनकर्त्री

आर्यिका श्री 105 विज्ञानमती माताजी

प्रकाशक

धर्मोदय साहित्य प्रकाशन

सागर (म. प्र.)

- **कृति** : **प्रवचन मञ्जूषा भाग-1**
- **प्रवचनकर्त्री** : आर्यिका श्री 105 विज्ञानमती माताजी
- **संकलन** : आर्यिका संघ
- **सम्पादन** : सतेन्द्र जैन
- **संस्करण** : प्रथम, मार्च 2011
- **आवृत्ति** : 1100 प्रतियाँ
- **मूल्य** : 15/-
- **प्राप्ति स्थान** : धर्मोदय साहित्य प्रकाशन
सागर (म. प्र.)
094249-51771
- **मुद्रक** : विकास आफसेट, भोपाल

पूज्य 105 आर्यिका श्री विज्ञानमती माताजी: जीवन-झाँकी

पूर्वनाम	:	लीला
पिता	:	श्री बालूलाल जी
माता	:	श्रीमती कमला जी
जन्मतिथि	:	मिति आश्विन शुक्ला पंचमी, सन् 1963
जन्मस्थान	:	भीण्डर (उदयपुर-राजस्थान)
लौकिक शिक्षा	:	हाईस्कूल
परिणय	:	भीण्डर में ही, 18 वर्ष की आयु में, सन् 1981
गृहत्याग	:	परिणय के 18 माह बाद
प्रतिमाधारण	:	अलोध में 5 प्रतिमा, कुचामन में 9 प्रतिमा के व्रत
आर्यिकादीक्षातिथि	:	2 फरवरी 1985, कूकनवाली (कुचामनसिटी-राजस्थान)
दीक्षागुरु	:	परम पूज्य आचार्यकल्प श्री विवेकसागर जी मुनिराज
रुचियाँ	:	स्वाध्याय, तप-त्याग, चिन्तन-मनन, लेखन
विशिष्टता	:	मधुर, गम्भीर पौराणिक शैली में प्रवचन
कृतियाँ	:	शीलमञ्जूषा, तत्त्वार्थमञ्जूषा, संस्कार मञ्जूषा, भक्तिपुञ्ज मञ्जूषा, बाल संस्कार मञ्जूषा, चउबीस ठाणा प्रश्नोत्तर मञ्जूषा, विवेक मञ्जूषा, प्रवचन मञ्जूषा, भोगोपभोगपरिमाणविधि, गुरु स्तुति, दोहा शतक, पलायन क्यों? भूषणद्वय महाकाव्य, सच्चे देव का स्वरूप, अच्छी सास, बहू कैसी? अनर्थदण्ड क्या? तत्त्वार्थसूत्र विधान, चौंसठ ऋद्धि विधान, सम्मेदशिखरविधान, कल्पद्रुम मण्डल विधान, बड़ेबाबा विधान, उपसर्गहर रक्षाबंधन विधान।
दीक्षित शिष्याएँ	:	आर्यिका श्री वृषभमती, आदित्यमती, पवित्रमती, गरिमा मती, सम्भवमती, वरदमती।

अनुक्रम

1.	धर्म क्या है ?	7
2.	भावों का फल	12
3.	सुबह-सुबह कैसे संस्कार?	17
4.	तोते का संदेश	23
5.	कुछ भी साथ नहीं जायेगा	27
6.	मनुष्य का कटोरा	31
7.	गलतफहमी का फल	34
8.	बिलछानी (जीवाणी)	38
9.	जैन के चार धर्म	43
10.	अहिंसा का फल	55
11.	मुनि निंदा का फल	67
12.	चिलाती पुत्र	72
13.	रक्षाबंधन पर्व	80

धर्म क्या है ?

धर्म किसी स्थान विशेष पर नहीं या व्यक्ति विशेष के पास नहीं होता है धर्म तो अपनी आत्मा का परिणाम है। धर्म की प्राप्ति बहुत मुश्किल है, व्यक्ति बिना किसी पुरुषार्थ के, बिना पैसों के, घर में बैठकर भी धर्म कर सकता है। धर्म संसार में किसी का भी हो अहिंसा धर्म ही मुख्य है। जितने-जितने प्रतिशत अहिंसा आती जायेगी उतना-उतना धर्म भी आता जायेगा। जब हमारा परिणाम परद्रव्यों में जाता है तो हम धर्म से विमुख हो जाते हैं या धर्म से दूर हो जाते हैं और जब वही परिणाम परद्रव्यों से हट जाता है और आत्मा की ओर लग जाता है तो धर्म हो जाता है। या धर्म की भूमिका प्रारम्भ हो जाती है। मंदिर आना, पूजा करना, स्वाध्याय करना, माला फेरना, ये सब धर्म नहीं, धर्म के परिकर हैं। धर्म कोई मूल्यवान वस्तु नहीं तथा बाह्य में धर्म का मूल्य नहीं है। व्यक्ति अकेला बैठकर भी और चाहे तो सामूहिक रूप से भी धर्म करना चाहे तो कर सकता है। लेकिन धर्म अहिंसा प्रधान होना चाहिए। जहाँ अहिंसा का परिपालन होता है, वहाँ धर्म होता है। इस जीव को सबसे ज्यादा प्रेम अपने प्राणों से होता है। वह लाखों करोड़ों रुपए देकर भी अपने प्राणों की रक्षा करता है और कभी-कभी तो दूसरे के प्राणों को लेकर भी अपने प्राणों की रक्षा करता है। इसीलिए आचार्य महाराज राजवार्तिक ग्रन्थ में कहते हैं कि ''धन 11वां प्राण है।'' क्योंकि धन के जाने पर व्यक्ति के प्राण भी जा सकते हैं/ चले जाते हैं। अतः अहिंसा ही धर्म है। इस धर्म का पालन करने वाला व्यक्ति अपने और पर के प्राणों की या जीवों की रक्षा करता है। हमारे निमित्त से दूसरे के प्राणों की रक्षा होना ही तो धर्म है। यदि हमें अनुभूति हुई कि हमारे पैर से चींटी मर गई और हमें उसके मरने पर दुःख की अनुभूति हुई या कुछ ऐसी फीलिंग हुई कि हमारे निमित्त से पाप हो गया या हिंसा हो गयी तो ऐसा पश्चाताप करना ही धर्म है। पापी से पापी जीव से भी हिंसा हो जाए तो वो भी दुखी होता है। किसी जीव के घाव पर मल्हम लगाने से वह ठीक हो गया तो उस दिन अपने आप में शांति की विशेष अनुभूति होती है कि मैंने कुछ अच्छा काम किया है। अहिंसा

धर्म का पालन किया है। लेकिन कभी-कभी बिना सोचे भी ऐसे बहुत से काम हो जाते हैं, जिनसे पाप का आस्रव होता है। यदि तुम्हारे खाने, पीने, सोने, बोलने में भी अहिंसा धर्म आ गया तो बहुत बड़ा धर्म हो जायेगा। कुछ लोगों की धारणा होती है कि मैं बहुत बड़ा धर्मात्मा हूँ। ऊँट कब तक बड़ा दिखता है जब तक कि वह पहाड़ के पास से नहीं निकलता है। ऐसे ही वो धर्मात्मा जब तक अपने से बड़े अहिंसक के पास नहीं जाता तब तक ही बड़ा मानता है। जब बड़ों के पास पहुँच जाता है तो उसे समझ में आ जाता है कि अपन तो अभी धर्म की भूमिका में ही नहीं हैं।

यदि एक प्रतिष्ठित व्यक्ति धर्म करता है तो उसे देखकर 10 लोग और धर्म करते हैं। उसके साथ-साथ सभी की असंख्यात गुणी कर्मों की निर्जरा में साधक बनता है। जिस अध्यक्ष की अध्यक्षता में धर्म होता है, चातुर्मास होता है और समाज के द्वारा जो धर्म किया जाता है, आहार दान, स्वाध्याय, पूजन-विधान, वैयावृत्ति आदि तो सभी का 6वां भाग पुण्य अध्यक्ष को मिलता है। क्योंकि उनके निमित्त से धर्म हुआ है। यदि प्रतिष्ठित व्यक्ति पाप करता है तो उसे देखकर भी 10-20 लोग भी पाप में प्रवृत्त होते हैं। यदि समाज में 6 व्यक्ति शराब पीते हैं तो एक व्यक्ति के शराब पीने का पाप का फल भी अध्यक्ष को मिलता है, क्योंकि अध्यक्ष समाज का राजा है और यदि अध्यक्ष समाज में पुरुषार्थ करता है कि कोई शराब नहीं पीयेगा उसके बाद भी कोई पीता है तो फिर पाप का भागीदार अध्यक्ष नहीं होगा। इसीलिए वृद्ध व्यक्ति को साधु के आने पर माइक लगाने, स्टेज बनाने में नयी पीढ़ी को आगे लाना चाहिए। यदि नयी पीढ़ी में धर्म नहीं आया तो आगे भविष्य में धर्म कैसे सधेगा? यदि अपनी वृद्धावस्था सुधारना है, मरण सुधारना है तो बेटे-बहू को धर्म सिखाओ, धर्म कार्य में आगे लाओ।

पण्डित गोपालदास बरैया को सभी जानते हैं, वो कभी मंदिर नहीं जाते थे। एक बार मेहमान आने से माँ ने कहा मंदिरजी के दर्शन करा लाओ। वो उन्हें मंदिर ले गये, मेहमान धर्मात्मा थे, वे मंदिर में दर्शन के साथ-साथ पूजा-पाठ, जाप, स्वाध्याय भी करने लगे। बरैयाजी बाहर खड़े-खड़े इंतजार में उनको बार-बार दरवाजे से झाँक-झाँक कर देख रहे थे। लेकिन मेहमान आये ही नहीं। उन्हें अंदर बहुत समय लग रहा था। अबकी बार जब उन्होंने अंदर

झाँका तो एक व्यक्ति स्वाध्याय कर रहा था। लब्धिसार या क्षपणासार का उन्हें गणित समझ में नहीं आ रही थी। वे पढ़ते-पढ़ते कह रहे थे कि कोई कॉलेज का विद्यार्थी होता तो हल कर देता बरैयाजी ने सुना तो बोले मैं कॉलेज का विद्यार्थी हूँ मुझे दे दीजिए, मैं घर पर हल करके आपको दे दूँगा। उन्होंने कहा नहीं, घर पर विनय नहीं हो पायेगी तो बरैयाजी ने कहा, नहीं आप जैसा कहोगे मैं वैसा ही करुँगा। तब वे बोले बिस्तर पर रखकर नहीं पढ़ना, कुर्सी टेबिल पर भी नहीं पढ़ना। जमीन में चौकी रखकर पलाशना बिछाकर शुद्ध वस्त्र पहनकर पढ़ोगे तो देता हूँ। बरैयाजी ने हाँ कहा और ले गये और उसको पढ़ने बैठे तो रात के 2 बज गये पता ही नहीं चला। उसके बाद उनकी शास्त्र पढ़ने में ऐसी रुचि लगी कि शास्त्र अध्ययन करके जैन लघु सिद्धान्त प्रवेशिका लिख दी, जिसकी परिभाषाएँ सामान्य व्यक्ति नहीं समझ पाता है। यह मंदिर के बाहर भी गया तो उसका फल है। इसीलिए बहू-बेटे को धर्म में लगाओ ताकि उनका जीवन भी सुधरे और तुम्हारा बुढ़ापा भी सुधर जाये। नहीं तो न तुम सुखी हो पाओगे और न वे सुख से जीवन जी पायेंगे। अहिंसा धर्म हमारे जीवन में कहाँ है? सुबह से शाम तक देखते, सोचते रहना चाहिए। घर में झाडू-पौंछा लगाते-लगाते भी हम अहिंसा धर्म का पालन कर सकते हैं।

एक मंदिर की महिला एक हाथ में फूल-झाडू और दूसरे हाथ में पौंछा लेकर पौंछा लगाती है। पूरा पौंछा लगाने के बाद बाल्टी देखती है कि कितनी चींटिया मरी हैं। उसके बाद में प्रायश्चित लेती थी। यह विवेक है और यही अहिंसा धर्म है वह मालिन होकर भी ऐसा कर रही थी और हम अहिंसा धर्मी होकर भी ऐसा नहीं कर पाते हैं। जैनों के बीच में रहकर भी जैनी होकर भी नहीं सीख पाते हैं और उसने जैनी का समागम पाकर जिनवाणी सुनकर सीख लिया। हम गृहस्थ हैं घर में रहते हैं सफाई करना पड़ती है और सफाई नहीं होगी तो जीवों की उत्पत्ति होगी। आपके घर में आटा छाने बिना रोटी नहीं बनती है, क्यों आटा छानते हैं कभी इस बात को नहीं जाना? उस आटे में जो चौकर है उसे छानकर निकाल देते हैं और उसको पानी में डाल देते हैं। फिर क्यों छाना हम इसीलिए छानते हैं कि यदि जीव चढ़ गया हो तो उसकी रक्षा हो जायेगी। अहिंसा धर्म का पालन हो जायेगा। लेकिन पानी में डाल दिया तो तुमने उसे एक कटोरी पानी डाला अर्थात् उस छोटे जीव के लिए तो वह समुद्र

भर पानी है। कई लोग इसीलिए छानते है कि आटा बारीक हो जाये ताकि रोटी अच्छी बनेगी। लेकिन जैनों के यहाँ तो अहिंसा की दृष्टि रखकर आटा छानना चाहिए और अहिंसा की दृष्टि है तो एकाध जीव मर भी गया तो भी पाप नहीं लगेगा क्योंकि हमने प्रमाद नहीं किया। काम करने के साथ-साथ हमारा कितना विवेक है। जितना विवेक है, उतना धर्म है। हम देखकर न चलते हैं न बैठते हैं। कभी-कभी साधु के दर्शन करने जाते हैं तो साधु को देखते हैं और चीटियों के बिल पर ही बैठ जाते हैं। 50 किलो का वजन उस चीटीं के ऊपर तो पर्वत जैसा ही गिरा हो। मंदिर में भी देखकर नहीं चलते तो चौकी से भी टकरा जाते हैं। जहाँ धर्म करने गये थे वहाँ अधर्म कर लिया। यदि अहिंसा-हिंसा का विवेक आ जाये तो धर्म करना कठिन नहीं है। पुरुषार्थसिद्धियुपाय में हिंसा का प्रकरण 49 गाथाओं में बताया है। कैसे-कैसे हिंसा का फल मिलता है। कहीं हिंसा न करते भी हिंसा का फल मिलता है और कहीं-कहीं हिंसा करते-करते भी हिंसा का फल नहीं मिलता है। हिंसा का पाप नहीं लगता है। कभी-कभी हम किसी बीमार को देखने गए तो कह देते हैं कि इतनी वेदना हो रही है। हे भगवन्! इससे तो अच्छा है इसे उठा ले। ऐसा कह दिया वह मरकर सुअर बन गया, एकेन्द्रिय बन गया तो क्या दुःख/वेदना समाप्त हो जायेगी? उसका दुःख मिटे या नहीं लेकिन हमने ऐसा कहकर संज्ञी पंचेन्द्रिय के मारने का पाप बाँध लिया है। यदि वह नरक चला गया तो णमोकार मंत्र भी न सुन पायेगा। न बोल पायेगा, यहाँ भले ही वेदना हो रही है, फिर भी णमोकार मंत्र तो बोल रहा है/सुन रहा है। ऐसे ही कोई मर गया तो कह देते चलो अच्छा मर गया सुलट गया, तुमने मरने की अनुमोदना करके पाप का बंध कर लिया। भले ही वह मंदिर नहीं जाता है। लेकिन कषायों की मंदता बनी रहेगी। नरक में तो कषायों की मंदता नहीं है, अधर्म ही है। सामान्य से ही हम सहज रूप से गाली दे देते हैं। कुत्ता कह देते हैं तो सोचो कुत्ते की मम्मी, पापा, आदि कुत्ता-कुतिया हो जायेंगे। दूसरी तरफ वचन वर्गणा मिली भी उसका दुरुपयोग कर लिया, असभ्य वचन बोले तो फिर गूंगे बनोगे, हकलाओगे, तुतलाओगे। वचन बल नहीं मिलता है। कभी-कभी बच्चों को पागल कह देते हैं। यदि तुम्हारा वचन लग जाये और वह पागल हो गया तो फिर दवाई करवाते फिरोगे क्योंकि हमारे वचनों में विवेक नहीं है। वैचारिक क्षमता नहीं है। धर्म को करने की आवश्यकता

नहीं है। **अधर्म को छोड़ दो।** धर्म तो अपने आप ही आ जायेगा। कपड़े का मैल उतारने पर सफेदी अपने आप ही दिखती है। सफेदी लाने की आवश्यकता नहीं है। इसीलिए विचार करना चाहिए कि किस काम के करने में हिंसा हो रही है, कैसा बोलने में हिंसा हो रही है। पता ही नहीं चलता है। पूजन करते-करते भगवान् से कह रहे कि क्षुधा रोग/भूख प्यास नाश हो जाये और मन में विचार चल रहा है कि गर्म-गर्म पकौड़ी खाऊँगा। आज मौसम अच्छा है। काम बाण नाश हो जाये, पुष्प चढ़ाते हैं और कोई लड़की दर्शन करने आयी तो सोच लेते हैं, यह हमारे लड़के को ठीक रहेगी। ये सब बातें दुकान में याद नहीं आती हैं, वहाँ कोई लड़का सामान खरीदने आया तो माल देकर फ्री कर देते हैं, क्यों दूसरा ग्राहक खड़ा है। इतना सोचने का, बात करने का समय वहाँ पर नहीं है। यदि तुमने किसी की शादी करवा दी और लड़का शराबी निकल गया तो कहेंगे उन्होंने करवायी थी, गालियाँ देगें, वह और अच्छा निकल गया तो पापा ने करवायी थी। जब सामने वाला हमारी सुनना नहीं चाहते और हम जबर्दस्ती ठूँसते हैं, फिर कहते हैं कि बेटे-बहू हमारी सुनते नहीं। अब वृद्धावस्था में क्या लेना-देना? अरे! तुम कमा रहे हो, खूब कमाओ, तुम खाओ, हमें भी खिलाओ। यदि तुम भूखे रहोगे तो मैं भी भूखा रह जाऊँगा। हमें क्या करना है ? जैसे तुम्हें हर किसी को सलाह देने का समय मिल जाता है। वैसे भगवान् की भावनात्मक वचनात्मक स्तुति करते हो उसके लिए समय मिला कभी, भगवान् से कहते हो कि हे भगवान् आपको कभी भूख नहीं लगती है, हमें भूख लगती है, आप धन्य हो, कभी नहाते नहीं फिर भी मैल नहीं लगता है, हम नहाने के बाद भी मैले रहते हैं। मैल से भरे रहते हैं। कभी कहते आप जैसा हमें बनना है, वह पहले की पण्डितों की रचनाएँ पढ़ लेते हैं। **भोगों में इतना पुरुषार्थ करते हैं, लेकिन योगों का पुरुषार्थ कभी नहीं करते हैं।** जहाँ करना है, वहाँ नहीं करते इसीलिए दुखी होते हैं। जितना आवश्यक है, उतना न करके अनावश्यक करते हैं, यदि हम मात्र आवश्यकों को करें तो वहीं अहिंसा धर्म है। यदि अनावश्यक करते हैं तो अधर्म है। हम विचार करके मात्र आवश्यक को करके धर्म को प्राप्त कर सकते हैं।

भावों का फल

एक सेठ की दो लड़कियाँ थीं, जिन्हें उनकी माँ ने बहुत अच्छे ढंग से संस्कारित किया था। लड़कियों को संस्कारित करने से देश, धर्म, समाज की संस्कृति जीवित रहती है, तीनों कुलों को पवित्र बना देती है। एक मातृ कुल में भाभी, भतीजी में, दूसरी ससुराल में ननद, देवरानी, जेठानी में और यदि गुरु के पास चली जाती तो गुरु के कुल को। लड़का जितना पैसा व्यसनों में तो लड़की भी उतना पैसा फैशन में बर्बाद करती है। लड़का व्यसन में शरीर, धन बर्बाद करता है तो लड़की अपना शील, धर्म कुल की इज्जत लुटा देती है।

यदि एक लड़की संस्कारित है तो वह कुल, समाज, धर्म को संस्कारित कर सकती है और एक लड़का संस्कारित है तो पचास, सौ वर्ष तक जिनधर्म, जिनालय सुरक्षित रहेंगे। इसीलिए दोनों में संस्कार डालना चाहिए। सेठ ने भी लड़की के जीवन में बहुत अच्छे संस्कार डाले थे, मुख्य रूप से शील को सुरक्षित करने के। स्त्री भात के समान है। कब कौन खा ले, पता नहीं। स्त्री का मुख्य श्रृंगार शील है। शील के बिना सभी गुण अवगुण हो जाते हैं। शील का भारी महत्त्व है। शील से ही कागज रुपया बन जाता है। शील के बिना कागज का कोई मूल्य नहीं शील का परिपालन बचपन से ही प्रारम्भ हो जाता है। माँ, बुआ, पिता , चाचा के माध्यम से। दादी, बुआ आदि शील की महिमा बताते रहें एवं सीता अंजना की कथाएँ सुनाते रहने से आपकी बेटी भी सीता, अंजना की श्रेणी में आ सकती है। सेठ ने भी बचपन से ही उनमें संस्कार डाले, 8 वर्ष की उम्र में ही लड़के, लड़कियों में पुरुषत्व, मातृत्व की योग्यता आ जाती है। अशुद्धि से होने के साथ ही वासनाएँ जागृत होने लगती हैं। कुछ ऐसे हार्मोन्स शरीर में आ जाते हैं, जिससे गर्भ धारण की शक्ति आ जाती है। इस समय सही दिशा-निर्देश, सही साथी न मिले तो शील खतरे में पड़ जाता है। जीवन बर्बाद हो जाता है। जैसे कण्डे के भीतर की आग बाहर नहीं दिखती लेकिन अंदर आग रहती है, वैसे ही वासनाएँ बाहर नहीं दिखती, लेकिन अंदर ही अंदर सुलगती रहती हैं। पहले स्त्रियाँ हर परिस्थिति में शील का पालन करती थीं,

आज तो विधवा विवाह तलाक आदि होते हैं या अन्य किसी माध्यम से पति-पत्नी में तनाव हो जाता है। अंजना पवनञ्जय का भी 22 वर्ष तक वियोग रहा था, सीता भी दो बार वनवास गई, रावण के पास जाना पड़ा फिर भी शील को सुरक्षित रखा। अनित्य, नश्वर संसार है, संसार में कब क्या कुछ हो जाये कोई भरोसा नहीं। कल आये न भी आये लेकिन काल जरूर आ जायेगा। सेठ ने दोनों लड़कियों का विवाह धन, रूप, गुण देखकर कर दिया लेकिन आयु को कौन देख सकता है? कोई नहीं देख सकता। और कुछ ही दिन बाद वे विधवा हो गईं। दुःख का पहाड़ टूट गया। ससुराल में रहती हैं, कुछ दिन बाद ससुराल में पति के बिना कोई महत्त्व नहीं, उनके साथ भी ऐसा ही हुआ और सेठजी उनको अपने घर ले आये क्योंकि जहाँ पति पत्नी का, पत्नी पति का तिरस्कार करती है तो उन पति, पत्नी की घर में, समाज में, कोई इज्जत नहीं करता। पति, पत्नी की लड़ाई और स्त्री का शृंगार मात्र शयन कक्ष तक सीमित होना चाहिए। एक कम बुद्धि वाला, एक अधिक बुद्धि वाला है तब तो ठीक है, लेकिन बराबर वाला है तो लड़ाई और यहाँ तक कि हाथा पाई भी हो जाती है। पत्नी भी मार देती है। एक बार एक महिला माताजी से प्रायश्चित लेने आई कि मैंने अपने पति को मारा। घर के बाहर तो सादगी से रहना चाहिए, **तैयार होकर निकलना मतलब शील को बेचने जैसा है।**

तीन-चार साल की लड़की को भी तैयार करती हैं, नेलपालिश, लिपिस्टिक, हेयरस्टाइल बनवा कर रखती हैं तो वही बड़े होकर प्यार कर लेती है, भाग जाती है। जब तक 16 साल की न हो, तब तक शृंगार नहीं करवाना चाहिए/ करने नहीं देना चाहिए। उसके बाद वो समझने लगती है, उसके शृंगार से वह ठगाई जाती है। पहले से ही समझा दो तो बाद में सही रहती है। सहज रूप से सभी पुरुष का आकर्षण स्त्री की तरफ होता है। यही तो वेद कर्म है। फिर भी पुरुषार्थ करें तो शील सुरक्षित रह सकता है। सेठ घर पर लाकर उनको धर्म के मार्ग पर लगाता है। नियमावली बना दी गई अष्टमी, चतुर्दशी का उपवास करना, पूजन, स्वाध्याय करना और साधु हो तो आहारदान देना। वैयावृत्ति करना और इन सबके अलावा अपने अनुशासन, निगरानी में रखता

था। दोनों बहिनें सभी कार्य करती, ब्रह्मचर्य पालन का सबसे बड़ा साधन उपवास है। गरिष्ठ भोजन भी नहीं करती थीं, क्रियाएँ एक सी लेकिन भावों में अंतर था, बड़ी भाव पूर्वक सभी क्रियायें करती, लेकिन छोटी बाह्य में सब करती, भाव भोगों में लगे रहते थे। एक करती तो एक को करना पड़ता था। पिता से डरती थी जो बच्चा पिता से डरता है, उसका जीवन विकसित होता है। क्योंकि पाप से भी डरता है, माँ बाप दोनों को नहीं डाँटना चाहिए, एक डाँटे तो दूसरे को पक्ष नहीं लेना चाहिए। पक्ष लेने से बच्चा विपक्ष में चला जाता है। मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि में यही अंतर है। सम्यग्दृष्टि है तो क्या खाता पीता है, कैसा रहता है, क्या करता है तो जरूरी नहीं कि वह अच्छा नहीं खा सकता, अच्छे से नहीं रह सकता। टी.व्ही. भी नहीं देख सकता है, सब कुछ कर सकता है। गरीब, लूला, लंगड़ा, काना, काला, कुरूप, कुबड़े को सम्यग्दर्शन हो सकता है। लेकिन सम्यग्दृष्टि यहाँ जा नहीं सकता है। लोग सोचते हैं कि सम्यग्दृष्टि तो सुंदर, सुहावना, लगता होगा। दाल रोटी नहीं मिलती, जो रोटी को छोड़ता है, उसके पीछे रोटी भागती है। एक करता है, खाता है, दूसरा को करना पड़ता है, खाना पड़ता है, इसी अभिप्राय में अंतर है। मुनीम सब करता है, चलती भी उसी की है। लेकिन हानि होने पर मुनीम को विषाद नहीं लाभ होने पर हर्ष नहीं। हर्ष विषाद तो सेठजी को होता है। सेठजी के अनुसार कार्य होता, स्वामित्व रहता है, लेकिन मुनीमी करते हुए भी नहीं करता है। तोता, कबूतर पिंजड़ा में रहना नहीं चाहता और बाहर जाना चाहता है तोता सम्यग्दृष्टि कबूतर पिंजड़े से निकलना ही नहीं चाहता है कबूतर मिथ्यादृष्टि। सम्यग्दृष्टि निमित्त मिलते ही दीक्षा ले लेता है। मिथ्यादृष्टि को तीर्थयात्रादि में भी घर दिखता रहता है इसीलिए तो यात्रा में भी शोर सूतक आदि लग जाते हैं। दोनों ही बहिनें सभी क्रियायें करती थीं। करते-करते अंत में समाधिमरण करके एक राजा के यहाँ राजकुमारी और एक वेश्या के यहाँ वेश्या बन गई है। दोनों के ही सर्व सम्पन्नता थी, क्योंकि दोनों ही व्रतोपवास बराबर करती थी। लेकिन अभिप्राय में अंतर से एक सुसंस्कारित इज्जत वाले स्थान पर और एक सामान्य लोक में निंदित स्थान पर पैदा हुईं।

एक ऊर्ध्वगामी थी, एक अधोगामी थी। एक संत बहुत पहुँचे हुए थे, भूत-भविष्य को भी जानते थे। यश भी फैला हुआ था। एक ज्योतिषी था लड़का या लड़की क्या होगा, बताते थे, लेकिन वो बताते लड़का और अपनी डायरी में लड़की नोट करते, लड़का हो जाता तो कोई कुछ नहीं और लड़की हो जाती तो वह अपनी डायरी बता देता कि मैंने तो लड़की बताया था। इस प्रकार उसकी बहुत चलती थी। दोनों संत के पास जाती और पूछने लगती कि कहाँ से आ रहे हैं, कहाँ जायेंगे? दोनों ही जाती, आमना-सामना होता तो आपस में प्रेम उमड़ने लगता है, ऐसा लगता है, जैसे कोई निकट का सम्बन्ध है, वैसे अकेले में ही पूछते लेकिन रानी कहती कि उस वेश्या को बुला लो संत कहता, क्यों रानी कहती वो मेरी है, ऐसा लग रहा है। संत कहता है कि तुम दोनों पूर्व भव में बहिनें थीं। बाहर क्रियायें एक सी थी, लेकिन भाव में अंतर था, इसीलिए ऐसा हुआ। भावों का फल है, व्यापार में भी भाव आ जाये तो लाभ। भाव गिर जाये तो हानि। भाव सही है तो जीवन हमेशा उत्थान की तरफ बढ़ता जाता है। प्रातः से सायं तक भाव देखते रहना चाहिए कि हमारे जीवन में कहाँ कषाय, ईर्ष्या, वासना, पाप हुए हैं? भगवान् के सामने इतना भी सोच लेता है कि मैंने व्यर्थ ही पाप किया, उससे मुझे क्या मिला है। तो भी 25 प्रतिशत पाप कम हो जाता है। अपने आप में कर्त्तृत्व भाव है तो संसार वृद्धि, कर्त्तव्य का भाव है तो संसार से पार हो सकते हैं।

लड़की को संस्कारित करने के साथ-साथ लड़कों को भी भोजन बनाना सिखाना चाहिए। जो माँ अपने लड़के को भोजन बनाना नहीं सिखाती हैं, वह अपने कुल को पवित्र नहीं रख पाती हैं। यदि लड़का भोजन बनाना जानता है तो होटल और हास्पिटल दोनों से बच जाता है। होटल में भोजन भी शुद्ध नहीं और भोजन में प्रोटीन्स भी नहीं पहुँच पाते हैं, क्योंकि होटल में सस्ती और सड़ी गली चीजों का ही प्रयोग होता है। एक बार एक महिला के यहाँ कुछ मेहमान आये तो वह बाजार से 5 किलो मैदा खरीद कर लाई, जब उसने उस मैदा को छाना तो एक अंजुली लटें निकली थी। बड़ी-बड़ी लटें तो दिख गयी, जो छोटी लटें होती हैं या सूक्ष्म जीव होते हैं, उनको तो केवलज्ञानी ही

जान सकता है।

एक बार एक होटल में एक व्यक्ति रोज-रोज दाल खाता था, एक दिन वह दाल टेस्ट फुल नहीं लगी, तब उसने होटल के नौकर से पूछा तो उसने बताया कि हम रोज दाल में माँसाहार वाला मसाला डालते थे, आज वो नहीं डाला है। वो हक्का बक्का रह जाता है। वो रोज शाकाहारी सोचकर खाता था, आज समझ में आया कि शाकाहार जानकर माँसाहार खाता रहा। यह होटल में खाने से हो जाता है। होटल वाले अपनी होटल का भोजन खाता पीता नहीं क्योंकि उसे ग्लानि आती है। जब आपका बेटा बड़ा होकर पढ़ने के लिए या व्यापारादि के लिए बाहर जायेगा तो होटल में या ढाबा में खायेगा। यदि बनाना आता है तो वह बनाकर खा लेगा, जिससे उसे आर्थिक एवं शारीरिक रूप से हानि नहीं उठानी पड़ेगी। शादी के बाद हर महीने में 20-25 दिन बाद महिलाओं की एक समस्या खड़ी हो जाती है। उस समय 4-5 दिन यदि वह होटल में खाता है, तो बड़ा महँगा पड़ेगा और यदि वह उस अशुद्ध अवस्था में महिलाओं का बना खाना खायेगा तो और भी महँगा पड़ेगा, धर्म से ही भ्रष्ट हो जायेगा। शास्त्र में बताया है कि यदि उस अवस्था का एक बार भी भोजन करता है तो तीन उपवास का प्रायश्चित बताया है। जानकारी हो या ना हो फिर भी पाप तो लगता ही है। विचार पूर्वक, विवेक पूर्वक खाता पीता है, अभक्ष्य को छोड़कर खाता है तो ही मनुष्यपना सार्थक है। नहीं तो तिर्यंच व मनुष्य में कोई अंतर नहीं है। जब कभी पत्नी पीहर जाती है तो भी विकल्प बना रहता है, क्या करेंगे। यदि बनाना आता है तो 8 दिन भी निर्विकल्पता से रह सकते हैं। दाल वाटी, सब्जी चावल इतना जरूर सिखाना चाहिए। लड़की को भी कुकिंग कोर्स सिखा देना चाहिए ताकि लालाजी भी होटल में नहीं जायें। होटल का खाना और घर पर पत्नी के हाथ/माँ के हाथ के बने भोजन में भावनात्मक अंतर है। लड़का होटल से बचता है तो व्यभिचार से, व्यसनों से बच जाता है। व्यसनों से बचा तो धर्म भी पुष्ट, शरीर भी पुष्ट और परलोक भी अच्छा/वेश्या का भोग मात्र शरीर पुष्टि, पाप वृद्धि तथा अधोगति वाला होता है। पापानुबंधी पुण्य भोगों को प्राप्त कराकर नरक में ले जाता है। पुण्यानुबंधी पुण्य भोग के साथ योग की ओर ले जाता है, परम्परा से निर्वाण प्राप्त करता है।

सुबह - सुबह कैसे संस्कार

एक परिवार में 12-13 साल की लड़की अच्छे संस्कारों से संस्कारित हो रही थी। माँ जैसी संस्कारित होती है, बेटी भी वैसी ही संस्कार वाली होती है। माँ जैसी क्रियायें करती है, प्रत्येक कार्य में विवेक और अहिंसा का ध्यान रखती है तो बेटी भी वैसा ही सीखती है। उस माँ की प्रातः से रात तक की चर्चायें बहुत अच्छी थीं, धर्म को साथ लेकर कार्य करती थी। जिस गृहस्थ के जीवन में भोगों के साथ योग (धर्म) रहता है, वही गृहस्थ परम्परा से निर्वाण को प्राप्त करता है और जो योगों के बीच में भी भोग ढूँढ़ता है, उसका जीवन पतन के गर्त में गिर जाता है। जो 12 व्रतों को पालता है, भले ही संकल्प पूर्वक नहीं पाले, वह फिर भी स्वर्ग के सुखों को प्राप्त कर लेता है। जो माँ प्रातः उठकर प्रतिदिन प्रार्थना करती है, माला फेरती है, स्वाध्याय करती है तो उनके बच्चे भी वो सभी काम स्वभावतः ही करने लगते हैं। माँ का कर्त्तव्य है कि अपने डेढ़ माह के बच्चे को खिलाते-पिलाते, सुलाते समय णमोकारमंत्र सुनाए तो वही उसका मंदिर है, पूजा है, जाप है। अभी माँ करवाती है तो बड़े होकर वह मन से ही मंदिर जाना प्रारम्भ कर देती है। कहने की आवश्यकता नहीं पड़ती। बोलते समय यदि बच्चे को ॐ का उच्चारण करवाये तो उसका शारीरिक और मानसिक विकास होता है। घर में सभी बड़े बूढ़े या छोटे भी बच्चे को खिलाते समय या जब उससे बातें करते हैं तो उसे ॐ सिखाएँ, ॐ से शरीर के सारे अंगों में झंकार उठती है, शांति की अनुभूति होती है। ॐ बीजाक्षर है, ॐ में द्वादशांग का सार है, तीन लोक गर्भित हैं, सर्व धर्मों में ॐ को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। सर्वमान्य है। सभी मंत्रों का मूलाधार ॐ है। बच्चे को झूला में झुलाते समय माँ या अन्य कोई लोरी सुनाते हैं तो उसके स्थान पर णमोकार मंत्र, भजन, पूजन की जयमाला भी सुना सकते हैं। इससे धार्मिक संस्कार पड़ते हैं। आप उसे पापा आयेंगे, खिलौने लायेंगे ऐसा सुनाकर पापा के प्रति प्रेम उत्पन्न करते हैं, तो पापा के प्रति तो उसका प्रेम स्वभावतः है, हमें उन कर्मों से प्रेम उत्पन्न कराना है, जहाँ हो नहीं पाता है। वो लड़की भी बड़ी हो गयी थी, बच्चे को चलते समय भी नीचे देखकर चलने के संस्कार डालना

चाहिए। जिससे चाल भी सही हो और अहिंसा धर्म का पालन करना सीखें, हम छोटे थे, तब गाइड में नियम रहता था कि रोज एक उपकार करना तो उसमें रास्ते में से कंकर कंटक या केलादि के छिलके उठाकर अलग करना या किसी वृद्ध दुःखी अनाथ की किसी भी प्रकार से सेवा करना। उस समय वो गाइड का नियम आज ईर्यापथ से चलने में काम आया। धर्म बन गया। अहिंसा पालने में सहायक हो गया। बोलने की विधि भी सिखाना चाहिए। नहीं तो आगे जाकर सबसे उद्दण्डता से बोलेगा, तब उस समय आपको व अन्य लोगों को भी बुरा लगेगा अभी बच्चे के लिए तो अच्छा लगता है, लेकिन बाद में आपको ही निंदा का पात्र बनना पड़ेगा। माँ-बाप ने यही सिखाया है क्या? ऐसी उलाहना सुनना पड़ेगी। बड़ों के प्रति विनय आदर भाव नहीं तो जीवन का कोई मूल्य नहीं। बीज को जैसी खाद, जैसा पानी, वह वैसी ही फलीभूत होगा। लड़की देखती थी कि माँ कैसे काम करती है, माँ आटा छानकर चोकर को शोधन करके छाया में रखती है। जीवादि की रक्षा के लिए आटा छानती है, अहिंसा धर्म का पालन करने के लिए छानती है। यदि आप आटा मात्र चौकर निकालने के लिए छानते हैं और उसको पानी में, नाली में या गाय को या सड़क पर डाल देते हैं तो यह धर्म नहीं, इससे मात्र पाप का ही आस्रव होगा। क्योंकि प्रमाद वृत्ति है, जीव मरे या न मरे, पाप तो लगेगा ही। ऐसे ही सब्जी सुधारते समय यदि उसमें इल्ली, लट आदि निकलती हैं तो उसको एक स्थान पर रखने से धर्म होता है, यद्यपि जो जन्मा है, वो मरेगा लेकिन हमारे कारण से क्यों मरे? हम उसकी हिंसा का पाप क्यों लादें? जुएँ निकालकर हम ऊपर से ही नीचे फेंक देते हैं, हमें कोई ऐसे ही फेंक दे तो कैसा लगे? जुएँ निकालकर बालों में ही रखकर एक स्थान पर रख देना चाहिए, यदि आप ऐसा कहते हैं कि ऐसा करने से वह पुनः चढ़ जाती है तो 1 किलोमीटर दूर छोड़ आओ तो नहीं चढ़ेगी। और धर्म हो जायेगा। यद्यपि किसी का घर नहीं छुड़ाना चाहिए, फिर भी तुम गृहस्थ हो काम करना पड़ेगा तो इस प्रकार से करो कि मरे भी नहीं, कार्य भी हो जाये। यह बिना प्रयोजन का पाप है। बिना सोचे समझे, विवेकहीनता से काम करने से महान् पाप का अर्जन होता है। उसकी माँ विवेकवती थी तो उसके अंदर भी संस्कार पड़ते जा रहे थे। विवेक पूर्वक काम करे तो गृहस्थ भी

सोलहवें स्वर्ग तक जा सकता है। बिना विवेक के कारण ही साधु के हाथ में भी लट आ जाती है। एक बार छोटी माता जी के आहार में खरबूजा देते समय चलती लट आ गई। धोया, बनाया, प्रासुक किया फिर शोधन किया तो जीती जागती लट आ गई, तब सोचो तुम अपने खाते समय कितनी लटें खा जाते होंगे, क्योंकि तुम तो टी.व्ही. देखते समय, गपशप करते समय खाते हैं। वो तो अभ्यास है सो ग्रास मुँह में चला जाता है, नाकादि में नहीं। एक बार एक व्यक्ति ने नियम माँगा तो माताजी ने शोधन करके खाने के लिए कह दिया, दाल वाफला का प्रोग्राम था, बैठा खाना शुरू करते ही आधा बाफला खाया और दाल में लट निकल गई। बाल तो उड़कर भी आता सकता है लेकिन जीव जन्तु तो प्रमाद से आते हैं। भोजन में उबल जाते हैं। यदि माँ घर के प्रत्येक कार्य अच्छे से विवेक पूर्वक करती है तो उसकी बेटी भी सीखती है और बहू भी आकर सीख जाती है। दिन भर पाप का आस्रव तो होता ही रहता है, लेकिन विवेक से कार्य करके पाप कम कर सकते हैं। वह लड़की बड़ी हो गयी, बड़ी होते ही माँ-बाप ने ब्याह कर दिया। एक परिवार में जहाँ सब कुछ तो था, लेकिन धर्म नहीं था, संस्कार नहीं थे। उस लड़की की ब्याह की बात जब चल रही थी, तब उसने गुरु महाराज के पास जाकर कुछ नियम लेती है। महाराज देवदर्शन, रात्रि भोजन का त्याग, पानी छानकर पीना, जैन के मुख्य गुण बताकर नियम दे देते हैं। लड़की का ब्याह एक जुआ है, वर अच्छा मिल जाये तो जीवन स्वर्ग है। नास्तिक, व्यसनी निकल गया तो जीवन नरक बन जाता है। लड़की ससुराल जाती है तो पहले दिन ही वो भोजन नहीं करती है। संकोच से कुछ कह भी नहीं पाती। तब सास पूछती है तो वह कहती है मंदिर जाना है, मंदिर जाये बिना भोजन नहीं करती। तब सास एक छोटे बच्चे के साथ मंदिर भेज देती है। वह भी चली जाती है और आकर भोजन करती है। रोज का यही क्रम बन जाता है। वो सोचती है सास से कैसे कहें कि आप भी चलो, **बड़ों को वचनों से कभी भी शिक्षा नहीं देना चाहिए वरन् आचरण से देना चाहिए।** बोलने से उद्दण्डता नजर आती है और पाप भी लगता है। पति को तो कभी-कभी ले जाती थी। पति भी कभी मंदिर के बाहर तक, कभी अंदर तक और कभी-कभी दर्शन भी कर लेता था, एकदम नास्तिक नहीं था।

वह रोज मंदिर जाती तो सास को भी व्यवहार निभाना पड़ता, आसपास के, अड़ोस-पड़ोस के या रिश्तेदारी वाले या मित्रगण तो कह ही देते हैं कि बहू इतना धर्म करती और सास घर का काम करती या सास मंदिर तक नहीं आती, ऐसे अनेक विकल्प उसके मन में उठ रहे थे तो वह भी मंदिर जाने लगी, भले ही बातें करती। धीरे-धीरे सास का मन भी मंदिर में लगने लगा, बहू को प्रसन्नता होती। यद्यपि मन से नहीं गई थी। फिर भी आयतन में जाने से मन भी उस तरफ चला गया। घर में बहूरानी हर काम पानी छानकर करती तो समय लगता। सास को गुस्सा आता तो बड़बड़ाती, लेकिन बहू जवाब नहीं देती थी, करती रहती तो सास भी धीरे-धीरे वैसा करने लगी, जवाब देने से सामने वाला उस काम की वेल्यू नहीं रखता है, समय निकलता गया, सास व उसके पति में कुछ परिवर्तन आ गया था।

एक दिन नगर में मुनिराज का आगमन होता है, मुनिराज छोटी उम्र के थे, पर बड़े विद्वान् थे। सबके यहाँ चौका लग रहा था। पड़गाहन होता तब बहू को ऐसा लगता कि मेरे घर पर भी पड़गाहन हो, घर पवित्र हो जाये, लेकिन सास के सामने कह नहीं पा रही थी, फिर भी इनडायरेक्ट रूप से कहती थी कि आज फलाँ के यहाँ आहार हो गये हैं, उन्होंने पूरे नगर में मिठाई बटवायी फलां के बुल्लुआ करवाया-सास सब सुनती तो कहती तुम भी आहार दे आना। बहू कहती मैं अकेली कहाँ जाऊँगी किसके साथ जाऊँगी मम्मीजी अपने ही घर पर चौका लगा लें तो? तब सास कहती अपने घर पर तो कभी चौका लगा ही नहीं क्या पता? लगाया और अंतराय आ गया तो आदि बातें कह दीं, लेकिन बहू का मन था, सास को ऐसा भी लग रहा था, अपने यहाँ न आये तो, साधु आये या न आये चौका लगाया है, प्रतिग्रह किया है तो भी 3 कम 9 करोड़ मुनिराजों को आहार देने का फल मिलता है। दुकान खोलते हो भले ही ग्राहक आये कि न आये, फिर भी सुबह से रात तक इंतजार करते हैं। 30 दिन भी ग्राहक नहीं आया 31 वें दिन आया तो क्या दुकान एक माह में एक दिन ही खोलते हो, नहीं वहाँ तो 365 दिन ही सुबह से रात तक इंतजार करते हैं, आज नहीं तो कल, सुबह नहीं तो शाम। यहाँ दो दिन साधु नहीं आया तो साधु से कह देते हैं, क्या वहाँ भी ग्राहक से कहने जाते हो। नहीं, वहाँ तो इंतजार कर

लेते हैं। तो यहाँ भी इंतजार करना चाहिए। इंतजार के बाद जब आते हैं, तब पूरे दिनों की विशुद्धि का फल भी मिलता है। जैसे – सराफा की दुकान वाले के एक माह में एकाध बार ही ग्राहक आता है, लेकिन वो एक साथ एक माह का खर्च और आय करा देता है। बहू ने सास को मना लिया और पति को भी तैयार कर लिया। पड़गाहन करने खड़े होने के लिए। बनाने वाले के साथ कमाने वाले को भी शुद्धि बोलना चाहिए ताकि उसका अंतरङ्ग भी शुद्ध हो और वो भी धर्म में आगे आये। धर्मपत्नी मिलने पर पति भी सुधर जाता है। भाग्य से पहले दिन ही महाराज का पड़गाहन हो जाता है। आहार भी निरंतराय हो जाते हैं। महाराज जाने लगते हैं, तब बहू पूछती है, महाराज सुबह– सुबह कैसे? महाराज कहते हैं, संसार की दशा देखकर। महाराज भी बहू से पूछ लेते हैं कि तुम्हारी उम्र कितनी बस 5 वर्ष, तुम्हारी सास की उम्र 3 वर्ष, पति की अभी जन्मे और ससुर की जन्म ही नहीं हुआ।

ससुर यह सब बातें सुन लेते हैं, तब उन्हें बड़ा अचरज होता है और गुस्सा भी आता है, सास के सामने बहू को ही बहुत कुछ कह देते हैं। पर बहू जवाब नहीं देती है और मम्मी से कहती है कि पापा ही महाराज से पूछ लें। पूर्व पुण्य के उदय से लक्ष्मी प्राप्त हुई थी, लेकिन धर्मात्मा नहीं थे, जिसके पास धन रहता है, वह धर्म को महत्त्व नहीं देता है। जिस घर में ससुर डायरेक्ट बहू से नहीं बोलते हैं, वहाँ मर्यादाएँ बनी रहती हैं, शील भी सुरक्षित रहता है। संसार में परस्त्री से नहीं बोलना चाहिए। स्त्री आग पुरुष घी संगम होने पर घी पिघलता ही है। मूलाचार में लिखा है कि यदि स्त्री चाहे वह कानी, कुबड़ी, लूली, लंगडी, नाक बह रही हो, अंधी बहरी हो तो भी उस स्त्री का सम्पर्क नहीं करना चाहिए क्योंकि उनके सम्पर्क से ब्रह्मचर्य नाश होने की संभावना होती है। जब मुनि के लिए ऐसा लिखा है तो गृहस्थ को तो दूर रहना ही चाहिए। महाराज के दर्शन करके जब पापी से पापी, क्रूर से क्रूर प्राणी भी शांत हो जाते हैं तो उसके ससुर की क्या विशात थी, वह भी वहाँ जाकर शांत हो गये और पूछते हैं महाराज मेरी बहू ने प्रश्नों के उत्तर ऐसे क्यों दिये, तब महाराज ने कहा सही–सही उत्तर दिये। आप कह रहे हो सही उत्तर दिये हैं। उसने कहा कि मेरा जन्म नहीं हुआ। जबकि मैं तो 60 साल का हूँ, धर्म के प्रति तुम्हारी आस्था

नहीं है, इसीलिए तुम्हारा अभी जन्म नहीं हुआ है। तुम्हारी पत्नी ने 3 साल से ही धर्म करना शुरू किया है सो उसकी उम्र 3 वर्ष की और उसका पति अभी–अभी धर्म करना शुरू किया है तो वह अभी–अभी जन्मा है और तुम्हारी बहू 5 वर्ष से धर्म कर रही है तो उसकी उम्र 5 वर्ष है। यह सुनकर वो धर्म के प्रति समर्पित हो जाता है। आस्था बन जाती है और कल्याण के मार्ग पर बढ़ने के लिए अग्रसर हो जाता है। देखो **एक संस्कारित बेटी ने एक नास्तिक परिवार को धर्मात्मा का परिवार बना दिया।** एक बेटी को संस्कारित करने से दोनों कुल संस्कारित होते हैं। अपने बेटे को संस्कारित करना चाहिए ताकि वो पापी दुराचारी निंदा का पात्र न बने। बल्कि समाज में, राष्ट्र में, कुल का, धर्म का गौरव बनाये और धर्म ध्वज को युगों–युगों तक फहराता रहेगा।

अभयघोष मुनि की कथा – काकंदीपुर में राजा अभयघोष राज्य करते थे, उनकी रानी का नाम अभयमति था। दोनों में अत्यन्त प्रीति थी, एक दिन राजा घूमने जा रहा था। रास्ते में इन्हें एक मल्लाह मिला। जो जीवित कछुए के चारों पैर बाँधकर लड़की में लटकाये जा रहा था। राजा ने अज्ञानता वश तलवार से उसके चारों पौर काट दिए, कछुआ तड़फड़ाकर मर गया और अकामनिर्जरा के फल से उसी राजा के चण्डवेग नाम का पुत्र हुआ। एक दिन चन्द्रग्रहण देखकर राजा को वैराग्य हो गया। उसने पुत्र को राज्य भार सौंपकर दीक्षा धारण कर ली। वे कई वर्षों तक गुरु के साथ रहे, इसके बाद संसार समुद्र से पार करने वाले और जन्म, जरा, मृत्यु को नष्ट करने वाले अपने गुरु महाराज से आज्ञा लेकर और उन्हें नमस्कार कर धर्मोपदेशार्थ अकेले ही विहार कर गये। कितने ही वर्षों बाद विहार करते हुए काकंदीपुर में आये और वीरासन से स्थित होकर तपस्या करने लगे। इसी समय उन्हीं का पुत्र चण्डवेग (कछुआ का जीव) वहाँ से आ निकला और पूर्व भव की कषाय के संस्कारवश तीव्र क्रोध से अंधे होते हुए उस चण्डवेग ने उन मुनि श्री के हाथ पैर काट दिए और तीव्र कष्ट दिया। इस भयंकर उपसर्ग के आ जाने पर भी अभयघोष **मुनि मेरु सदृश निश्चल रहे** और **शुक्लध्यान के बल से** अक्षयानंत मोक्ष का लाभ लिया।

तोते का संदेश

एक राजा अपने राजमहल में आराम से रह रहा था। देखने में आता है, मनुष्य जानवरों को बड़े शौक से पालते हैं, परन्तु उनमें से हिंसक पशुओं को पालकर खुश होते हैं। जैसे- कुत्ता, बिल्ली, बंदर आदि को, उस राजा को भी जानवरों को पालने का शौक था। मनुष्यों को भी पालता था। राजा की भाँति आपको भी हिंसक पशुओं को पालने का शौक होगा। कुत्ता, बिल्ली, बंदर वगैरह का यदि कोई भी प्राणी चाहे राजा हो या सामान्य प्राणी हो यदि वह हिंसक पशुओं का पालन पोषण करता है तो शिकार का दोष लगता है। कुत्ता कितना ही अच्छा क्यों न हो? सफेद हो, इशारे पर नाचने वाला हो। हीरा, मोती, पन्ना, डांगी आदि नाम वाला हो पर वह अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता है। बिल्ली को चूहा दिख जाये तो वह छोड़े बिना नहीं रहती है। राजा के यहाँ यह सभी पल रहे थे। इसके साथ-साथ राजा ने एक तोता भी पाल रखा था। संसार में स्वतंत्रता और परतंत्रता से कार्य करता है। उस राजा ने पक्षियों की स्वतंत्रता छीन ली। स्वतंत्रता से व्यक्ति सुख और परतंत्रता से व्यक्ति को दुःख की अनुभूति होती है। उस तोते को भी उसने पिंजरे में बंद कर लिया। तोते की स्वतंत्रता छीन ली। अब वह स्वतंत्र रूप से उड़ नहीं सकता क्योंकि उसे अब कैद कर लिया है, वह परतंत्र हो गया है। अब उसे दूसरे के इशारे पर नाचना पड़ेगा। स्वतंत्र होकर भी वह कोई कार्य नहीं कर सकता। जिस भारत देश को सोने की चिड़ियाँ कहा जाता है। वह भारत देश परतंत्र हो गया, अंग्रेजों ने उस पर अपना अधिकार जमा लिया। देश की पूरी जनता परतंत्र हो गयी। उसी प्रकार वह तोता भी परतंत्र हो गया। भारत को स्वतंत्र कराने में अनेक वर्ष लग गये। स्वतंत्रता और स्वच्छंदता दोनों अलग-अलग हैं। स्वतंत्रता से व्यक्ति अपना जीवन सुव्यवस्थित ढंग से व्यतीत करता है। भारत को स्वतंत्र कराने में कितना समय लगा। स्वच्छंदता से व्यक्ति बिना विवेक के अनाप-सनाप क्रियायें करता है। आज प्रायः देखने में आता है कि हर बहू-सास के साथ स्वतंत्रता से जीवन व्यतीत करना चाहती है। जिस बहू को यह लगता है कि वह परतंत्र है

उसे स्वच्छंद होना चाहिए। और **स्वच्छंदता पाप के आस्रव का कारण है।** और स्वतंत्रता में ऐसा नहीं, यदि स्वतंत्र रहना चाहते हो, घर के अनुशासन को सही रीति से पालन करें। उस राजा ने तोते को पाल रखा था। उसको सोने के पिंजरे में रखा था। वह उस पिंजरे में दुःखी था, क्योंकि वह परतंत्र था, स्वतंत्रता पूर्वक विचरण नहीं कर सकता था, भले ही उसे सोने के कटोरे में दूध पिलाया जाता था। किसमिस वगैरह खिलाई जाती थी। रोज ताजे फल खाने को दिए जाते थे। हर तरह की व्यवस्था थी। डॉक्टर भी थे। डॉक्टर तो केवल शारीरिक तकलीफ दूर कर सकता है। मानसिक तकलीफ नहीं, उसे वह नहीं जान सकता है। वह तोता मन ही मन भगवान से कहता है कि हे भगवन् जंगल में मुझे कुछ भी नहीं मिलता तो भी मैं स्वतंत्र था। यहाँ पर मुझे सब कुछ मिलता है पर यहाँ में परतंत्र हूँ।

एक दिन राजा शिकार करने के लिए जा रहा था, उसने अपने तोते से कह- भाई मैं जंगल जा रहा हूँ। यदि तुम्हें अपने साथियों को कुछ संदेश भेजना हो तो दीजिए। मैं उनसे कह दूँगा। आप लोग आपस में कजलियाँ देते हैं। पर अंदर की गाँठ नहीं खुलती। कजलियाँ कैसे बनती हैं? गेहूँ को छाया में बोया जाता है। उसमें कोई क्रांति नहीं होती। बाहर की हवा भी नहीं लगती धूप लगना तो दूर है। पूरा का पूरा पौधा समाप्त हो जाता है। धूप नहीं लगती तो उसका विकास नहीं हो सकता या सही-सही नहीं होता। बनियाँ लोग कहते हैं या उनकी नीति है कि सत्र बदल गया अब ब्याज नया शुरू होगा। 100 रुपये लिए उनका ब्याज छोड़कर नया शुरू हो जाता है। कजलियाँ में तो आपस में देने पर प्रेमभाव और आपस में मित्रता बढ़ती है। **वैमनस्य दूर होते हैं।** आज देखने में आता है कि बैर ज्यादा बढ़ गया है और नया खाता शुरू हो जाता है। पूरा काम किया और एक काम को मना कर दिया तो सब बेकार हो जाता है। पूर्व कार्य पर पानी फिर जाता है। यदि यह महोत्सव अंदर-अंदर मनाओ तो कल्याण होगा। परन्तु आज तक इन उत्सवों को बाहर-बाहर मनाते अनंतकाल हो गये। कुछ भी फायदा नहीं हुआ। राजा ने यह समाचार लाकर तोता को सुना दिया। कहा कि भाई तुम्हारा मित्र कह रहा था कि वह सोने के पिंजरे में रहता हूँ। सोने के कटोरे में दूध पीता हूँ, किसमिस खाता हूँ पर तुम पिंजरे में

नहीं रहना अर्थात् नहीं फँसना, एक वृक्ष पर सैकड़ों तोते बैठे उनमें संगठन होता है यह राजा की एक ही आवाज सुनकर सब तोते धड़ाधड़ नीचे गिर पड़े। यह देखकर राजा को बहुत दुःख हुआ, उसे लगा कि मैंने गलत समाचार सुना दिया। सभी तोते मेरे निमित्त से मर गये, मैंने ऐसे समाचार क्यों सुनाये, हजारों की संख्या में ये तोते मर गये। यदि स्कूटर से कुत्ता, बिल्ली, गाय, चूहा, मेढ़क मर जाता है तो कितना दुःख होता है।

एक व्यक्ति स्कूटर से जा रहा था, उसे सड़क पर पड़ा हुआ 15 फुट लंबा अजगर दिखाई नहीं दिया और उसने उसके ऊपर से स्कूटर निकाल दिया इतनी स्पीड़ से गाड़ी चला रहा था कि सड़क पर पड़ा हुआ सर्प भी दिखाई नहीं दिया। यदि जिंदा होता तो वह उसे ही निगल जाता पर वो तो मरा हुआ था। जो दयालु उच्च कुलीनवर्गीय होते हैं, यदि मेंढ़क आदि मर जाते हैं तो आकर प्रायश्चित लेते हैं और प्रायश्चित करते हैं। किसी से यदि हिंसा हो गई हो तो वह पंचायत बुलवाता है, प्रायश्चित के रूप में पैसे भी देना पड़ता है फिर **गुरु से प्रायश्चित लेता है** क्योंकि उसने लौकिक हिंसा की है। राजा भी दुखी होता है। सभी तोतों को देखता है। नाड़ी देखता है श्वास चल रही है। सब ठंडे हो गये, वह कहता है, इतना बड़ा पाप लग गया। महल में जाकर मीटिंग बुलवाता है, कहता है कि मुझसे अपराध हो गया ऐसा फिर जाकर तोते को जाकर डांटता है। तुमने यह कैसा संदेश पहुँचाया? सुनकर सारे के सारे तोते मर गये। एक के बाद एक धड़ाधड़ गिर गये जैसे अटैक आ गया, आँखें नहीं खोली, उसने कुछ सुना भी नहीं। उसके मित्र इतने सारे चले गये, उससे बड़ी मूर्खता मैंने अब की जो उन मित्रों के समाचार सुनाये। एक गलती की दूसरी गलती तो नहीं करता बुद्धि नहीं लगायी। मेरा प्यारा तोता मर गया। डॉक्टर को बुलाया राजा का तोता था। मिनिस्टर के मरने पर डॉक्टर को बुलाते हैं। बड़ों के मरने पर पैसा खर्च करना पड़ता है। छोटे-छोटे व्यक्ति मरते हैं तो कहते हैं, फेंक आओ हम लोगों में भी ऐसा होता है। यदि साधु मर गया तो एकाध किलोमीटर दूर जाकर छोड़ आओ, साधु का सिर यदि पशु-पक्षी उठाकर पर्वत पर ले गया तो समझना चाहिए गति अच्छी हुई और यदि सिर को गड्ढे में लेकर जाते हैं तो समझना चाहिए गति अच्छी नहीं हुई। व्यक्ति यदि शव को जलाकर आया है

तो उसे माला, शास्त्र, चौकी, अछार, फर्श वगैरह नहीं छूना चाहिए। दूर से दर्शन करना चाहिए। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो पाप का बंध होता है। यदि आगम के अनुसार नियमों का पालन नहीं करते तो निश्चित रूप से कुभोगभूमि जाओगे। जहाँ एक कान इतना बड़ा होता है कि उसी को बिछाकर सो जाओ। खाने के लिए सुगंधित मिट्टी मिलती है। घोड़े के आकार के पूछ वाले विभिन्न प्रकार की आकृति होती है। कुभोग भूमि में जिनेन्द्र भगवान के दूर से दर्शन करने से भी विशुद्धि बढ़ती है और पुण्य का बंध होता है। यदि लड़का हुआ तो हर्ष होता है, खुशी से नाचने लगते है, खुशियाँ मनाते हैं और यदि लड़की हुई तो विवाद होता है, दुःख होता है, कहते हैं कि लड़की हो गई। दोनों स्थिति में विनय नहीं रहती। वह तोता संदेश सुनकर गिर जाता है। डॉक्टर नाड़ी देखता है उसे कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि क्या हो गया? राजा बहुत दुखी होता है। राजा को दुखी देखकर पूरे राज महल में शोक छा जाता है कि राजा का तोता मर गया तोते की शवयात्रा की तैयारी शुरू हो जाती है। मखमल की गद्दी बनवाकर (उसे उस पर लिटाकर बैण्ड-बाजों के साथ शवयात्रा निकल जाती है) जैसे कोई राष्ट्रीय नेता मरता है तो पूरे राजकीय सम्मान के साथ, परेड के साथ सलामी के साथ अंत्येष्टि की जाती है। उसी प्रकार उस तोते की शवयात्रा जा रही है। चारों ओर से महिलायें पहुँच जाती हैं। भीड़ हो जाती है, सब यह देखना चाहते हैं कि क्या-क्या होना है। पिंजरे को खोलकर जैसे ही तोते को गद्दी पर लिटाया गया, वैसे ही तोता उड़कर राजा के झरोखे में जाकर बैठ गया। यह देख राजा कहता है, मैंने तुझे इतने लाड़-प्यार से रखा और तूने मुझे धोखा दिया। दूध पिलाया, फल खिलाये। मैंने आपको कोई धोखा नहीं दिया, आपने ही मेरे साथी को समाचार दिए थे कि कहना कि पिंजरे में बंद नहीं होना, उन्होंने प्रेक्टिकल करके समाचार दिए थे, इस प्रकार मुर्दे के समान पड़ जाना सो मैं भी उसी प्रकार पड़ गया, जैसे वो पड़े थे। तुम्हारे समाचार और मित्रों की बात को समझकर प्रेक्टिकल कर लिया तो सफल हो गया।

कुछ भी साथ नहीं जायेगा

एक राजा के मन में एक विचार आया (वह राजा भारत का नहीं था, लेकिन उसने भारत के बारे में बहुत कुछ सुन रखा था।) भारत को सोने की चिड़िया कहा जाता है। उसने सोचा भारतीयों के पास बहुत धन-सम्पत्ति होगी, जितनी भारतीय गरीब के पास धन-सम्पदा है, उतनी तो राजा होकर भी मेरे पास नहीं है। और उसने विचार कर लिया कि भारत की सम्पत्ति बटोर लाऊँगा। भारत के पास धन सम्पत्ति हो न हो लेकिन जैनियों के पास तो निश्चित है। एक बार एक व्यक्ति ने पूछा था कि जैनियों के पास इतनी सम्पदा क्यों होती है तो उत्तर मिला कि जैनियों के भगवान अपने साथ एक तार तक नहीं ले गये थे। वे अपनी सारी की सारी सम्पत्ति अपने भक्तों को दे गये और ये सरागी भगवान जो स्वयं आभूषण पहनते हैं तो दूसरों को क्या देंगे ? वास्तव में जिनेन्द्र भक्ति को करने वाले के पास कभी किसी चीज की कमी नहीं होती है। इसीलिए वो धनाढ्य होते हैं। उस राजा ने भारत पर आक्रमण करके धन सम्पत्ति लाने के लिए काफिला तैयार कर लिया और रवाना होने के पहले अपने गुरु से आशीर्वाद लेने गया। क्योंकि **गुरुओं के आशीर्वाद से प्रत्येक कार्य सफल हो जाते हैं।** गुरु ने आशीष देते हुए कहा कि भारत से तुम्हें जो कुछ लाना है, लाना जहाँ जाना है जाना। लेकिन एक काम अवश्य करना वहाँ गुरु/साधु होते हैं, वो बहुत पहुँचे हुए होते हैं। आगे पीछे की सभी जानते हैं और बड़े शांत, गंभीर होते हैं।

भारत कृषि के साथ-साथ ऋषि प्रधान देश भी है। वे साधु ऋषि धर्म की प्रतिमूर्ति होते हैं, धर्म बोलते नहीं हैं, लेकिन ऋषि के मुखारविन्द के माध्यम से धर्म ही बोलता है। वह आशीष लेकर प्रस्थान कर जाता है। यहाँ आकर नगर-नगर उजाड़ दिए, अनेकों महिलाओं को विधवा बना दिया बच्चो को अनाथ बना दिया, परिवार उजड़ गये, अनेकों माँ को संतानहीन बना दिया। और अपार धन सम्पत्ति लूट-लूट (हीरा, सोना, चाँदी, माणिक, मोती, जवाहरात) कर ऊँटों पर लाद-लादकर वापिस जाने लगा। भारत में उसने ऐसा आतंक

मचाया था कि माँ अपने बच्चों को उसके नाम से डराती थी, कई लोग साधु/माताजी का नाम लेकर भी डरवाते है। यह ठीक नहीं है बच्चों के मन में साधु/माताजी के प्रति गलत धारणा बन जाती है वो सोचता हैं माता जी मारते हैं/डाँटते है तो मुझे उनके पास नहीं जाना है, उनको तो ऐसा समझाना चाहिए कि तुम्हें माताजी के पास ले चलेंगे वो तुम्हें कहानी आदि के माध्यम से समझायेंगे।

उस राजा को गुरु की बात याद थी उसने कहा धन-सम्पत्ति तो लूट ली अब गुरू के अनुसार यहाँ के संत के पास जाना है उनसे मिलना है। चारों दिशाओं में सैनिकों को भेजा गया कि साधु मिले तो उनको यहाँ लेकर आओ, सैनिकों ने बहुत खोज की लेकिन नहीं मिले एक-दो तीन दिन तक खोज करते रहें, पहले साधु जंगलों में, गुफाओं में, कोटरों में पर्वतों पर साधना करते थे। वर्षायोग में भी वहीं योग धारण करके ध्यान में लीन रहते थे। आखिरकार ढूंढते-ढूंढते एक दल वाले को ऋषि मिल गये, उन्होंने देखा ये तो न देखते हैं न बोलते हैं फिर भी उन्होंने देखा ये तो न देखते हैं न बोलते हैं फिर भी उन्होंने कहा कि ए साधु चलो तुम हमारे साथ चलो तुम्हें हमारे राजा ने बुलाया है। जल्दी चलो यदि हमारे राजा को गुस्सा आ गया तो जान से हाथ धोना पड़ेगा। फिर भी वो कुछ नहीं बोले सैनिक वापिस आ गए, बताया राजा को वह तो कुछ कहते भी नहीं देखते भी नहीं। राजा ने फिर भेजा फिर भी वो ही स्थिति रही-तीसरे दिन राजा स्वयं गया हाथ में नंगी तलवार लिए क्रोध में तमतमाता हुआ बड़ा घमण्डी है मेरी बात भी नहीं सुनता है मैं उसको अभी मौत के घाट उतार दूँगा सोचते-सोचते जा रहा था लेकिन जैसे ही वहाँ पहुँचता है तो उसके साथ से तलवार गिर जाती है मन का क्रोध भी शांत हो जाता है। यह सब साधु के आभा मंडल का प्रभाव था ऐसे भयानक जंगल में इतनी सौम्य मुद्रा के साथ शांत बैठे है कोई विकल्प नहीं और वह थोड़ी दूर पर जाकर घोड़े से उतर कर बैठ गया उसने पहली बार दिगम्बर मुद्रा देखी थी जो रोज-रोज देखते है उनकी इतनी विशुद्धि नहीं बढ़ती है विनय भी नहीं रह पाती है। नीति भी है साधु, राजा, अग्नि, पानी के पास अधिक नहीं रहना चाहिए तो अति दूर भी नहीं रहना चाहिए। अधिक पास रहोगे तो गुरू के प्रति विनय समाप्त होने से गुरू का तिरस्कार भी कर देता है। दूर रहेगा तो धर्म नहीं समझने के कारण संसार में

डूब जायेगा। राजा के अति पास तो राजा के क्रोध का भागी बनना पड़ेगा, अति दूर तो गरीबी भोगना पड़ेगी। अग्नि के अति पास तो जल जाओगे अति दूर रहे तो भोजन भी नहीं पका पाओगे। पानी के अति पास जाओगें तो बहकर डूब कर मर सकते हो अति दूर तो प्यासे रह जाओगे। जैसे घर में भी बहू को यदि मुँह लगा लिया तो जवाब देने लगेगी घर बिगड़ जायेगा। पहले से सिर पर चढ़ा लिया तो बाद में सुधारना मुश्किल है। वो राजा इंतजार कर रहा था कि ये मुनि/ ऋषि चुपचाप बैठे हैं कब बोलेंगे –अपरिचित था शांति से मौन पूर्वक बैठा रहा परिचित होते हैं तो कह देते है आप तो दिन भर ही माला फेरते हो हम अपनी तो सुना देते है भले ही आप नहीं बोल रहे हो। विनय रखना चाहिए विनय सर्वश्रेष्ठ गुण है समाज में लोक में प्रतिष्ठा को प्राप्त कराने वाला है। आखिर मुनिराज को दया आ गई, उन्होंने अपना ध्यान पूरा करके आँखें खोली तो वह थोड़ा पास में खिसक गया, जैसे ही मुस्कराया कि और आगे खिसक गया बोला मैं दूसरे देश से आया हूँ, मेरे गुरु ने कहा था कि आप बहुत पहुँचे हुए हैं, सभी कुछ जानते हैं। भूत, भविष्य की बात जानते हैं, कृपया मुझे बता दीजिए मैं कब मरूँगा। साधु ने कहा जिस दिन धरती लोहे की व आकाश सोने का हो जाये समझना तुम मरने वाले हो। वह बहुत प्रसन्न हुआ ऐसा कभी होगा नहीं तो मैं कभी नहीं मरूँगा और ये तो कभी झूठ बोलते नहीं, जो कहते हैं, वो होता ही है। मन की बात सुनकर किसको प्रसन्नता नहीं होती। अपने विरुद्ध बात हो तो गुस्सा आ जाती है। और वो कहता है महाराज मुझे कुछ और उपदेश दो। मुनिराज कहते हैं – तुमने जो इतनी सम्पत्ति इकट्ठा की है, वो तुम्हारे साथ जाने वाली नहीं है, उससे अर्जित जो पाप है वो तुम्हारे साथ जायेगा। यह सभी मंत्री, सेनापति, प्रजा सम्पत्ति को भोगने में तुम्हारा साथ देंगे, लेकिन पाप का फल भोगने में कोई साथ देने वाला नहीं है। तुम्हें स्वयं ही भोगना पड़ेगा। पुरुष वर्ग कितनी सम्पत्ति कमाये, पत्नी के लिए बच्चों के लिए करे, लेकिन उससे अर्जित पाप स्वयं भोगोगे पत्नी बच्चे साथ भी नहीं जायेंगे, महिलाएँ धर्म करेंगी तो, उसका फल पुरुष को नहीं उसे स्वयं मिलेगा। महिलाओं के अंदर भी ताकत होती है, अकेले ही मंदिर बना लेती हैं, पति को ज्ञात भी नहीं रहता है –रहली पटनागंज, मढ़ियाजी। राजा तुम जो ले जा रहे हो। वह तुम्हारे साथ एक कण

भी नहीं जायेगा। महाराज का काम था, उपदेश सुनाने का, वह सुनकर नमस्कार करके काफिला को प्रस्थान करने की आज्ञा देता है, सारी सम्पत्ति ऊँटों पर लादकर जा रहा था, भयानक जंगल में रास्ता भटक गया। मंत्री राजा जिस रास्ते से जा रहे थे, काफिला दूसरे रास्ते से चला गया। तभी अचानक राजा के पेट में दर्द, उसे बहुत वेदना हो रही थी, शूल का दर्द था। उसने मंत्री से कहा – मैं नहीं चल पाऊँगा। वेदना अधिक हो रही है। मंत्री ने कहा राजा जंगल से बाहर निकल जायें, जब तक तो थोड़ा सहन कर लो। थोड़ा चले कि राजा कहता मंत्री अब मैं एक कदम भी नहीं चल सकता हूँ और वो वहीं घोड़ा से उतर गया है। तभी मंत्री देखता है कि जमीन में काँटे, कंकड़ पत्थर थे तो मंत्री ने अपना कवच उतार बिछा दिया और राजा को लिटा दिया, जो मखमली गादी पर सोता था, आज वो जमीन पर लोहे पर सो रहा था। जेठ की गर्मी थी, तड़फ रहा था। कुछ भी आड़ नहीं थी तो मंत्री ने अपनी ढाल उसके ऊपर लगा दी, जैसे ही राजा ने देखा धरती पर लोहा, ऊपर सोना मैं अब मरने वाला हूँ, साधु की वाणी कभी निष्फल नहीं होती है। अब तो मंत्री जी मेरी अंतिम इच्छा पूरी करना, दर्द बढ़ता जा रहा है। मेरी अर्थी वैद्यों के कंधों पर निकालना और मेरे दोनों हाथ अर्थी के बाहर निकालना। मंत्री कहता ऐसा क्यों? राजा कहता – ''वैद्यों को घमंड है कि हम मरते को भी जीवित कर सकते हैं, लेकिन आयु समाप्त होने पर कोई बचा नहीं सकता है। उनका दम्भ हम बचाते हैं।'' यह तोड़ने के लिए और दूसरा सभी को मालूम हो जाये कि – ''संसार में खाली हाथ आये और खाली हाथ ही जाते हैं।'' उसने मुनिराज का उपदेश याद किया कि सम्पत्ति लूट कर पाप अर्जन किया है, वो साथ जायेगा। मैं उस सम्पत्ति को संभाल भी नहीं कर पाया हूँ और जा रहा हूँ। सिकंदर जैसा सम्राट भी कुछ नहीं ले गया तो सोचो तुम्हारे साथ क्या जायेगा, घर में बेटा बड़ा हो गया। व्यापार संभालने लगा तो पिता को विरक्त हो जाना चाहिए। प्रमाण कर लेना चाहिए अब दुकान में 5 घंटे से ज्यादा नहीं बैठूँगा। धीरे-धीरे विरक्त होते-होते वृद्धावस्था में पूरे विरक्त होकर क्षेत्र पर रहकर अपना जीवन मृत्यु सुधारना चाहिए। मृत्यु सुधर गयी तो अगला जन्म सुधर जायेगा। और ऐसी मृत्यु सुधारो कि अगला जन्म अंतिम हो, ऐसी भावना है।

मनुष्य का कटोरा

एक राजा बड़ा परोपकारी, दानवीर, धर्मात्मा था। उसके राज्य में सभी सुखी थे। फिर भी राजा ने दान की घोषणा की थी। राजा के कर्मचारी सूचना दे रहे थे कि जिसके घर में जो कमी हो, वो राजा के यहाँ आकर ले जाए, कोई मना नहीं, कोई मूल्य नहीं है, राजा उदार दिल वाला था, दान की घोषणा करना कोई बड़ी बात नहीं वरन् दान देकर बदले में पुनः प्राप्त करने की इच्छा न होना है। संसार में दान सभी देते हैं, लेकिन फल की आकांक्षा के साथ तो वह वट वृक्ष की भाँति नहीं फलता है। राजा ने भी दान की घोषणा आकांक्षा के साथ की थी कि मैं इतना दान दूँगा कि मेरे राज्य में कोई दुखी न हो, प्रजा संतुष्ट रहे, शांति के साथ सुख से जियें। लेकिन **जहाँ आकांक्षाएँ हैं, वहाँ सुख शांति नहीं**, सब कुछ करने पर भी यहाँ यश नहीं मिलता है, राजा भी सब कुछ कर रहा था, लेकिन राजा को प्रतिष्ठा, यश नहीं मिल रहा था, क्योंकि बाह्य विषयों में कुछ अंतरङ्ग कारण भी होता है। पूर्वोपार्जित कर्म साथ में रहता है। हमें अभी समझ में नहीं आता कि हम कहाँ अंतराय बाँध लेते हैं, किसी ने अच्छा कार्य किया है, निर्दोष है, फिर भी हम उन पर दोष लगाते हैं, कलंक लगाते हैं, मजाक बनाते हैं, उस समय हम कैसे कर्म का बंध कर लेते हैं और हम समझ नहीं पाते हैं, जब उदय में आता है, तब सोचते हैं कि हमने कौन-सा पाप किया था, जिससे हम सबका सहयोग करते हैं, भला सोचते हैं, फिर भी कोई सही नहीं मानता है। अभी यहाँ देव, शास्त्र, गुरु के सामने बातें करते हैं। हँसते हैं, किसी की मजाक बनाते हैं, तब पाप बंध जाता है। हम समझ नहीं पाते हैं और उसी का फल है कि अब हम धर्म करना चाहते हैं, सभी सुविधायें हैं, लेकिन उसी समय कुछ ऐसी परिस्थितियाँ आ जाती है कि कर नहीं पाते हैं। पहले उपयोग पूर्वक भगवान की भक्ति आराधना नहीं की, भले ही उन्हीं की चर्चा की हो तो भी पाप बंधेगा। जिसको जितना चाहिए उतना ले जा रहे थे, राजा को विश्वास था कि प्रजा ऐसी कोई चीज नहीं माँगेगी, जो वो दे नहीं पाये, प्रजा को भी विश्वास था, हमें जब आवश्यकता होगी तब मिल जायेगी,

संग्रह करने की आवश्यकता नहीं। एक वस्तु को संभालने के लिए दूसरी की आवश्यकता होती है, घर का मालिक जब चाहिए देता है तो संग्रहवृत्ति नहीं, लेकिन जब घर की महिलाएँ संग्रहवृत्ति करती हैं तो मालिक टाल देता है। बात टालने या देने की नहीं, बात संतुष्टि की है, संतोष की है। मानव में संतोष आ जाये तो उसका कल्याण हो जाये, तिर्यंचों में फिर भी संतुष्टि क्योंकि वहाँ संग्रह की क्षमता नहीं। लेकिन मानव के पास क्षमता है।

एक दिन राजा के पास एक ऐसा माँगने वाला आया कि वह वेशभूषा से तो भिखारी लग रहा था, लेकिन कहता है राजा मेरा यह कटोरा आप जिससे चाहें उससे भर दो, राजा कहता है रत्नों से भर दो वो कहता है कि रत्नों से भरो या पत्थर से भरो कोई फर्क नहीं और राजकर्मचारी उसे भरता है लेकिन पूरा राजकोष खाली हो गया, कटोरा नहीं भर रहा है। सबको बड़ा आश्चर्य होता है राजा भी सोच रहा है, क्या करूँ, कैसे भरूँ, मेरा वचन जा रहा है, कटोरा छिद्र रहित है, गिर भी नहीं रहा लेकिन बात क्या है? प्रजा एकत्रित हो जाती है। गरीब भिखारी का चपटा-सा सिल्वर का कटोरा भर नहीं रहा है, राजा की इज्जत का सवाल है। नगर के यांत्रिक, तांत्रिक, ज्योतिषी को बुलाया गया, लेकिन कोई भी समझ नहीं पा रहा है। आखिरी में राजा पूछता है कि तुम्हारा यह कटोरा बना किसका है तब वह कहता है कि राजन् यह कटोरा मनुष्य के हृदय और खोपड़ी का बना है। यह कभी भर नहीं सकता है, क्योंकि मानव मन कभी संतुष्ट नहीं होता है। कब्र में पैर लटकने के बाद भी नहीं छोड़ पाता है। जीते जी छोड़ दे तो कल्याण हो जाता है ।

गोधन, गज धन, बाज धन और रत्न धन खान।
जब आये संतोष धन, सब धन धूलि समान॥

तब राजा को समझ में आया कि मानव को जितना मिले उतना कम है। वास्तव में राजा ने भी आकांक्षा के साथ दान दिया था। पाप पुण्य का खेल है, कोई दे नहीं सकता संतुष्ट कर नहीं सकता है, धन्यकुमार को पाप के उदय से रत्न भी अंगारे बन गये और लकड़हारे के पुण्य से अंगारे हीरे बन गए। कर्त्तव्य करते रहना चाहिए, सफलता मिलना भाग्य पर आधारित है, कर्तृत्वभाव नहीं आना चाहिए। कर्त्तापने का भाव उछल-उछल कर बाहर आता है। मैं की

आवाज के साथ और रुलाता है संसार में। धर्म अन्दर ही अन्दर की व्यवस्था है, करण्ट की भाँति लोगों को दिखता नहीं फलीभूत होता है। वृक्ष की जड़ें, खाद पानी दिखती नहीं वरन् फल दिखते हैं। व्यवस्था करने वाला धर्म है। धर्म है तो शरीर कुटुम्बीजन सभी साथ देगें। इसीलिए धर्म हमेशा करते रहना चाहिए।

गलतफहमी का फल

एक वटवृक्ष के नीचे साधु बैठा था। लम्बी दाढ़ी थी, रुद्राक्ष की माला पहने, लंबा तिलक लगाये हुए, एक हाथ में माला लिए हुए, जाप कर रहा था, पास में ही कुआँ था, पनिहारिनें पानी भर रही थीं, कोई जा रही थी, कोई आ रही थी। **प्रश्न** - क्या पानी छानना जानते हो? पानी तो छानते हैं, लेकिन विधिपूर्वक नहीं, पानी खींचते समय बाल्टी में से एक-दो गिलास पानी तो नीचे गिर ही जाता है। उन जीवों को ऐसा लगता होगा, जैसे पहाड़/चट्टान से पछाड़ दिया हो, अचानक कोई नीचे गिरा तो वेदना अधिक होती है। बिलछानी करते हो? नहीं, भगवान के अभिषेक के लिए लाते हैं, तो बिलछानी करते हैं, घर के काम के लिए नहीं करते हैं, संसार के काम में नहीं तो जीवों की रक्षा कहाँ ? जीव रक्षा नहीं तो धर्म कहाँ है? बिलछानी नहीं तो पानी छानना न छानना बराबर है। एक वर्ष में एक बार भी बिलछानी की है तो 84000 मुनिराजों को आहार देने का फल मिलता है। यह बिना पैसे, बिना मेहनत का, कम समय में करने वाला धर्म है। अति पुण्य का कार्य है।

वहाँ भी कुएँ पर तीन महिलाएँ पानी भरने आ रही थीं, एक बनियाइन, एक क्षत्राणी, एक ब्राह्मणी थी। बनियाइन आगे क्योंकि होशियार होती है, संचालन का शौक रहता है। बीच में क्षत्राणी क्योंकि लज्जालु होती है, शील सुरक्षा की भावना रहती है, पीछे ब्राह्मणी थी, क्योंकि लोभी होती है पीछे-पीछे चलकर जैसे-तैसे कुछ मिल जाये तो अच्छा है। वहीं वृक्ष के नीचे बैठे साधु बाबा जाप कर रहा था। आगे वाली भी अच्छी, पीछे वाली भी अच्छी, बीच वाली को मार जूती की। उन तीनों ने सुना तो उस पर बनियाइन, ब्राह्मणी को देखकर हँसने लगी तो क्षत्राणी को गुस्सा आ गया, यह साधु हमें देखकर ऐसा कह रहा है और इसकी बात का ये दोनों भी समर्थन कर रही हैं। साधु तो जाप कर रहा था। लेकिन उसने गलत अर्थ ले लिया और साधु को भला बुरा कहने लगी और पानी भरे बिना ही घर आकर घड़े एक तरफ पटककर - बड़ा साधु बन गया, मैंने इसके बाप का क्या बिगाड़ा है ? जो मुझे ऐसा कह रहा है, ढोंगी

लगता है, ऐसे ही साधु तो धर्म को भ्रष्ट कर रहे हैं, फेर तो माला रहा है और देख हमें रहा था, ऐसे पाखंडी ही नरक-निगोद में जाते हैं और ऐसा बड़बड़ाती हुई कोप भवन में चली जाती है, सोचती है, ऐसे संसार में जीने से क्या फायदा मैं तो मर जाऊँगी। कोप भवन तो जानते होंगे, जहाँ सारी सामग्री काली-काली और क्रोध उत्पन्न करने वाली होती है। राजा, महाराजा के यहाँ जब कोई विशेष कारण से रानी को गुस्सा आ जाता है या फीलिंग महसूस करती है तो कोपभवन में चली जाती है, दोपहर का समय क्षत्रिय आया-देखता है सामने नहीं आई है, कहाँ गई है ? रोज तो इंतजार करती थी, ठंडा पानी का गिलास हाथ में लेकर तैयार होकर मीठी-मीठी बातें करके थकान दूर करती थी, गर्म-गर्म भोजन परोसती थी, आज क्या हो गया? रसोई भी बंद है, कहीं कोई खटपट नहीं हो रही है। यहाँ वहाँ चारों तरफ देखने के बाद छत पर देखता है कि कहीं किसी पड़ोसिन से बातें तो नहीं कर रही हैं, क्योंकि महिलाएँ अपने-अपने छत पर खड़ी होकर बातें किया करती हैं। पुरुष तो बाजार में मिल जाते हैं, महिलाएँ कहाँ मिले? सामने छत पर उसकी सहेलियाँ भी उनसे पूछता है। तब वह सुबह की पूरी घटना बताती है तो वो समझ जाता है कि निश्चित कोपभवन में होगी, वो पहुँच जाता है, पूछता है क्या हुआ तो कुछ भी नहीं कहती वो चादर उघाड़ता है तो फिर ढ़क लेती है, बताओ तो सही क्या बात है, बिना बताए कैसे पता चलेगा-ऐसे संसार में क्या जीना, नहीं जीना है तो मर जाना लेकिन कारण तो बता दो। क्या बता दूँ तुम्हारे जैसे क्षत्रिय के रहते हुए भी मेरी यह दशा है। वो बक रहा था, कौन क्या बक रहा था ? गुस्से वाला धीरे-धीरे बताता है, मनवाता है, प्रेम से पूछो तो बताता है वो बड़ वृक्ष के नीचे बगुला भक्त बैठा है, बक रहा था, मेरे को जूती मारने के लिए कह रहा था, साधु बना है, अपने लिए दूसरों को क्यों बुरा कहता है। सुनकर क्षत्रिय कहता है तुम उठो भोजन तैयार करो मैं देखता हूँ, उसका सिर तुम्हारे चरणों में रखूँगा, मैं भी क्षत्रिय हूँ, पतिपक्ष में तो गुस्सा जल्दी शांत हो जाता है। पति विपक्ष में गुस्सा बढ़ता जाता है। घर नरक बन जाता है। किसी से कुछ पूछना है तो प्रेम से विनय से पूछो वह सब बता देता है। वह क्षत्रिय हाथ में शस्त्रास्त्र लेकर वहाँ पहुँच जाता है? क्या देखता है कि बड़े-बड़े मूछों वाले बहुत सारे राजपूत लोग

वहाँ बैठे थे, वह सोचता अभी मारूँगा तो सभी मुझे मार देंगे, वह छुपकर खड़ा हो जाता है। सभी बातों को सुनता है, क्रियाएँ देखता है और धीरे-धीरे सब चले जाते हैं और वह साधु पुनः जाप करने लगता है, वही जाप आगे वाली भी अच्छी वह सुनकर सोचता है, यह जाप कर रहा है तो कुछ न कुछ रहस्य होगा, यहाँ तो चारों तरफ कोई दिख भी नहीं रहा है, न ही कोई महिलाएँ आती दिख रही हैं, फिर भी वही जाप साधु के पास पहुँच जाता है, बैठता है, व्यवहार निभाता है,समाचार पूछता है, मालिश करने लगता है फिर पूछता है आप यह क्या कर रहे हो साधु कहते हैं, जाप कर रहा हूँ, भले ही अच्छा नहीं लग रहा हो लेकिन व्यवहारिकता तो निभाते ही हैं। एक महिला - हम पहुँचे तो चौका की तैयारी कर ली, लेकिन प्रातः होते ही मेहमान आ गये, वो भी 12 साल के बाद। माताजी भी 10-12 साल के बाद। तो मेहमान भी 12 साल बाद मन में विकल्प लेकिन बाहर तो उनके सामने अच्छे से ही सब कर रहे थे। जाने पर खुशी भी लेकिन जाते समय यही कहा कि फिर आना। सम्यग्दृष्टि के धर्म-गुरु के प्रति ऐसे ही भाव होते हैं।

साधु बाबा बताते हैं - अगली वाली बुढ़ापा भी (वृद्धावस्था) अच्छी है, पीछे वाली (बाल्यावस्था) बचपन भी अच्छी बीच वाली जवानी को जूते से मारकर दबाना चाहिए तो जीवन विकास की ओर बढ़ता है। जवानी में इन्द्रियों को दबाकर नहीं रखा तो जीवन बर्बाद हो जायेगा। शराब, जुआ, लड़की को छेड़ना आदि सभी व्यसन जवानी के जोश में होश न होने से होते हैं। सभी अच्छे काम तीर्थयात्रा, साधना, तपस्या, व्यापार व्यवसाय में कमाई भी जवानी में अच्छे से होती है। 45 वर्ष में समझाओ तो समझ जाते हैं। छोड़ देते हैं, पहले समझाओ तो जोश में नहीं समझते है। बीमार होने के बाद छोड़ता है शराब, गुटखा आदि तो क्या छोड़ा पहले खाने में पैसे बर्बाद अब बीमारी ठीक करने में पैसा लगाओ, ठीक हो न भी हो, कैंसर ठीक होता ही नहीं है। वो सोचता है मैं पत्नी की गलतफहमी में आकर साधु हत्या जैसा महापाप कर लेता, मैं बच गया और सही राह मिल गई। संसार में जितने भी अशुभ काम वो गलतफहमी के कारण, घमंड भी गलतफहमी से, मैं सुंदर हूँ, मेरे से और कोई सुंदर नहीं, मैं धनवान हूँ, मेरे से और कोई धनवान नहीं है, इस गलतफहमी के

कारण ही मद कर लेते है। गलतफहमी से टेंशन हो जाता है। सही अर्थ लेते तो ऊपर-एकान्त में धर्मध्यान करेंगे, नीचे बार-बार चढ़ना उतरना नहीं पड़ेगा, सबके साथ मिलते रहेंगे, मन लगा रहेगा। अर्थ निकालने की सही विधि होना चाहिए। मिथ्यादृष्टि उल्टे अर्थ लेता है। सम्यग्दृष्टि सही-सही अर्थ निकालता है। उसने तो क्षत्रिय को पाप के गर्त में डाल दिया। अर्थ सही नहीं लिया, इससे लेकिन क्षत्रिय ने सोच विचार कर सही जानकारी लेकर कार्य किया। जिससे वह पाप से बच गया। वह तो जाप कर रहा था। बीच वाली (जवानी को) को वश में रखने से जीवन उत्थान की ओर नहीं तो जीवन पतन की ओर चला जाता है।

संसार में जितने भी लड़ाई झगड़ा सभी गलतफहमी से होते हैं। कोई कुछ भी कहे, उसे हम अपने ऊपर न लें ताकि प्रसन्नता रहे। जवानी में मदहोश होकर होश नहीं खोना चाहिए। यौवन में कल्याण भी कर सकता अकल्याण भी। जवानी में तप, त्याग, संयम के माध्यम से जीवन का उत्थान करना चाहिए।

साधु का काम जाप करना, ध्यान, अध्ययन करना ही है। एक शब्द के अनेक अर्थ हैं। सभी अपने-अपने अनुमान से अर्थ निकाल लेते हैं। साधु के वचन कभी झूठे नहीं होते, कह दिया मतलब होगा ही। जो महिलाएँ रोज-रोज गुस्सा करती हैं। उनके गुस्से का कोई महत्त्व नहीं है। क्षत्रिय को कभी गुस्सा आता नहीं, आ जाय तो पराजित करके ही आता है, भागता नहीं है। इसीलिए रानी के गुस्सा का राजा की दृष्टि में महत्त्व है। कोप भवन होते हैं, राजा मनाते हैं। टेंशन में भूख भी नहीं लगती, नींद भी नहीं आती। जो महिलाएँ पति के आते ही मुँह बनाती हैं, उनका प्रेम अच्छा नहीं रहता है। पति के आते ही पत्नी प्रसन्नता से बोले तो पति का आधा श्रम समाप्त हो जाता है। जितने भी व्यसन लड़ाई झगड़ा बहू अलग होती है, बाप-बेटा की लड़ाई जवानी में होते हैं। जवानी के जोश में पैसा भी बर्बाद, स्वास्थ्य भी खराब, प्रतिष्ठा भी कलंकित। ज्ञान के साथ विवेक नहीं तो संसार सागर में डूब जाते हैं। धन के साथ विवेक नहीं तो बड़ों का तिरस्कार करने लगता है। यौवन में विवेक नहीं तो सारे काम ही गलत करता है। इसीलिए इसे होश रखने के लिए मारकर रखना चाहिए।

बिलछानी - (जीवाणी)

(84000 मुनियों को आहारदान का फल)

एक सेठ मंदिर जा रहा था, मंदिर जाते समय उसने बाल्टी में थोड़ा-सा पानी रख दिया। उसकी नई-नई बहू आयी थी। उसने वह पानी नहाने-धोने के काम में ले लिया। सेठ को मन में चिंता हो रही थी कि घर के सभी लोग तो जानते हैं लेकिन बहू नई है, वो नहीं जानती है। वो उस पानी को काम में ले लेगी तो बड़ा अपराध हो जायेगा। बार-बार विकल्प आ रहा था, बड़ा भारी अपराध हो जायेगा। पूजा में मन नहीं लग रहा था। मन बड़ा चंचल है, कब कहाँ चला जाये कोई भरोसा नहीं। संसार में कोई ऐसा स्थान नहीं, जहाँ मन नहीं जाता हो। मन को बाँधकर रखो बार-बार प्रयास के बाद भी चला जाता है। लोग कहते हैं कि माला फेरते समय मन नहीं लगता है, उसका कारण उपयोग की एकाग्रता का न होना है। उस माला के प्रति अंतरङ्ग से उत्साह नहीं है, उमंग नहीं है। रोटी बनाते समय मन चला जाये तो रोटी जल जाती है। रक्षाबंधन आते ही महिलाओं का मन पीहर को चला जाता है। हर काम में वो ही वो दिखता है। कोई चीज गुम जाये और माला फेरने बैठ जाओ तो याद आ जाती है। क्योंकि उपयोग एकाग्र हो जाता है और णमोकार मंत्र का प्रभाव है। पुण्य मिला और पुण्य का फल मिला। एक बार णमोकार मंत्र पढ़ने पर जब दुर्धर पाप भी नाश को प्राप्त हो जाते हैं। जैसे बच्चा प्रवचन में मम्मी को परेशान करता है कि मम्मी प्यास लग रही है, यह खिलौना चाहिए या टाफी-बिस्किट चाहिए आदि। तब मम्मी कहती तुम परेशान करोगे तो कल से बिल्कुल नहीं लायेंगे तो वह चुप बैठ जाता है। फिर पुनः परेशान करता है तो मम्मी फिर डांटती है घर पर दूसरे दिन मम्मी पहले से कह देती है कि तुम वहाँ परेशान करोगे, कुछ मांगोगे तो नहीं, तभी ले जाऊँगी, तब बच्चा कहता है मम्मी ले चलो बिल्कुल परेशान नहीं करुँगा, फिर वहाँ पहुँचकर वही परेशान करता है तो मम्मी कहती है, तुमने घर पर क्या कहा था, वह चुप बैठ जाता है। ऐसा करके मम्मी बच्चे को बाँध लेती हैं। 4-5 दिन में बच्चा शांत बैठने लगता है,

ऐसा ही मन है, दो मणियाँ फेरे कि रसोई में, फिर दो फेरे तो बाजार में, दुकान में चला जाता है। आगे की योजना व पूर्व की स्मृति आने लगती है। माला फेरते समय मन को भी बच्चे जैसे समझाए तो मन भी शांत होकर एकाग्र हो सकता है। माला फेरने बैठे 5 तो पहले की 2 में आगे की याद, पीछे की 2 में पीछे क्या करना है, याद आने लगता है, सोचने लगता है। बीच की एक माला सही फिरेगी। पूजन पूरी करके जल्दी-जल्दी घर पहुँचता है तो देखता है बाल्टी में पानी नहीं है। सभी से पूछता है, सबने कहा हमने नहीं लिया, सेठ दोनों हाथ से सिर पकड़ लेता है और कहता है बड़ा अपराध हो गया। वो पानी बिलछानी का था। बिलछानी पानी छानकर छन्ने के ऊपर जो छना पानी डालकर बाल्टी में डाला जाता है। जिससे जीव पुनः उस बिना छने पानी में पहुँच जाये। जलकायिक जीव छानने मात्र से नहीं वरन् प्रासुक करने पर ही समाप्त होते हैं। छानने पर तो त्रसकायिक अलग होते हैं। दिनभर पानी छानने से भी अहिंसा का पालन नहीं होता। सेठ को बहुत दुःख होता है, वह अन्न जल का त्याग करके प्रायश्चित लेने के लिए आतुर हो जाता है और पास में ही विराजमान मुनिराज के पास पहुँचता है। नमस्कार करके महाराज! मुझसे मेरे यहाँ पर घोर पाप हो गया, बड़ा अपराध हो गया बिलछानी के पानी से कपड़े धो लिए प्रायश्चित दे दीजिए। महाराज कहते हैं कि 84000 मुनियों को एक साथ आहार करवाना, सेठ सोचता है, कहाँ मिलेंगे, एक साथ मिल भी गये तो सबका पड़गाहन मेरे घर पर ही हो जाये संभव नहीं, सभी आहार पर निकल जाये-आ भी गये तो मैं सबको आहार कैसे दे पाऊँगा? दूसरा विकल्प बता दो ऐसे दम्पत्ति को भोजन करवाना जो विवाह के बाद भी बाल ब्रह्मचारी हों। विवाह के बाद भी पति-पत्नी का सम्बन्ध नहीं जोड़ा हो वर्षों से एक साथ रहकर भी ब्रह्मचारी हों। सेठ पूछता है, महाराज कैसे पता लगेगा? तो महाराज कहते हैं कि जिस दम्पत्ति के भोजन करते ही तुम्हारी रसोई का चंदोबा सफेद हो जाये तो समझ लेना कि प्रायश्चित पूरा हो गया। बिना चंदोबा के जीव, जन्तु, चिड़ियाँ, छिपकली आदि आकर भी गिर सकते हैं। सात स्थानों पर चंदोबा होना ही चाहिए। घर में, रसोई में, मंदिर में, श्री जी के ऊपर होना ही चाहिए। दम्पत्ति-दम-दमन (पाँच इन्द्रियों के दमन) पति स्वामी हो। जो

दम्पत्ति हैं, वह स्वदार संतोष व्रती वह अपने पुरुष/स्त्री को छोड़कर अन्य के पास नहीं जाता है। गलत दृष्टि से नहीं देखता हैं। जहाँ लड़ाई होती है, वहाँ तनाव होता है। भोजन की लोलुपता के कारण ही थालियाँ फिकती हैं। थाली फेंकने वाला, जूठन छोड़ने वाला अगले भव में भूखा रहता है, खाने को नहीं मिलता है। क्योंकि अभी मिला था, उसका अपमान किया है। सेठ नगर के दम्पत्तियों को जिनकी अभी शादी हुई या जिनके बच्चे नहीं है, उनको जिमाना शुरू करता है रोज जिमाता और चंदोबा देखता, लेकिन कुछ नहीं। लोग भी सोचते कि सेठजी क्यों बुलाते हैं। रोज-रोज खिलाते हैं कारण क्या है? असिधारा व्रत है तलवार की धार पर चलना सरल है, लेकिन ब्रह्मचर्य का पालन करना कठिन है। इसीलिए ब्रह्मचर्य के आगे इन्द्र, नरेन्द्र सभी झुकते हैं, जैसे शरीर की शोभा आँखों से है, वैसे ही सब व्रतों में मुख्य ब्रह्मचर्य व्रत है। बहुत अच्छे काम करता है। दान, पूजा, उपवास भी करता है, लेकिन अब्रह्म का सेवन करता है तो अन्य सब काम निरर्थक है। प्रायश्चित पाप को समाप्त करता है, पाप समाप्त होने पर ही संसार समाप्त होता है। संसार समाप्त होता है तभी तो मुक्ति होती है, प्रायश्चित लेने से आलोचना करने से 70 कोड़ाकोड़ी सागर की स्थिति वाला कर्म भी अंतर्मुहूर्त में नष्ट हो जाता है। भावों का फल है भावों की विशुद्धि इतनी कि अंजन भी निरंजन बन गया और सेठजी का भी वो दिन आ गया कि चंदोबा सफेद हो गया। सेठ उस दम्पत्ति के चरण छूता है गुणगान करने लगता है कि आप धन्य हैं, आपका व्रत भी धन्य है। आप लोक में पति-पत्नी बनकर भी भाई-बहिन के समान रहते हैं। अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। वो दोनों अवाक् रह जाते हैं कि सेठजी को कैसे मालूम चला और उनका नियम था कि जिस दिन बात खुल जायेगी, उसी दिन दीक्षा ले लेंगे। गुरु के पास पढ़े थे, दोनों ने गुरुदक्षिणा में व्रत लिया था। लड़का शुक्लपक्ष का, लड़की कृष्णपक्ष का। योग था, पूर्व भव के सम्बन्ध थे, दोनों का विवाह हो गया। दोनों का संयम के प्रति कितना उत्साह था कि सहजता से नियम निरतिचार पाला। लड़की ने कहा भी कि आप दूसरा विवाह करके पिता की परम्परा चला लो, लेकिन गुरु शिक्षा का प्रभाव था, संयमित रहेंगे, दूसरा विवाह नहीं किया। वो दम्पत्ति थे, दोनों ने अपनी इन्द्रियाँ वश में कर रखी थीं।

यदि एक की भी इन्द्रिय वश में नहीं तो वे गमपति बन जाते हैं। क्योंकि उनकी आपस में लड़ाई होने लगती है, मनमुटाव हो जाता है। पति कहता है मैं स्वामी तुम सेविका हो, जैसा कहूँ वैसा करो। पत्नी कहती, तुम मेरे लट्टू हो तुम्हारा स्विच मेरे हाथ में है, मैं जैसा जहाँ दबाऊँ वैसा चलो। ऐसा करने से ही गमपति बनते हैं। घर में रहकर एक ही शयन कक्ष में रहकर भी पति-पत्नी बनकर ब्रह्मचर्य का पालन करना कठिन है। पवनंजय ने 22 वर्ष तक अंजना को पत्नी रूप में नहीं देखा तो कुछ नहीं एक दिन देखा तो रह नहीं पाया अंजना की कथा बन गयी। व्यभिचारी धर्म करते हुए भी धर्मात्मा नहीं क्योंकि अब्रह्म है तो सभी पाप आ जाते हैं। विद्यार्थी के देखो एक थाली गिलास में काम चला जाता है और पत्नी आ गई तो परिग्रह बढ़ जाता है। एक बार बिलछानी न कर पाया था, उसका प्रायश्चित था, करोड़ों में एकाध ही ऐसे युगल होते हैं। एक बार बिलछानी विधि पूर्वक करना मतलब 84000 मुनियों को आहार देना है। एक वर्ष में एक धीवर जितनी मछलियों को पकड़ता उतना एक बार की बिलछानी न करने पर पाप लगता है। पानी की एक बूँद असंख्यात् जीव आगम में बताये हैं, कहते हैं एक बूँद में इतने जीव कि यदि वे भ्रमर के समान होकर रहे तो भी तीन लोक में जगह नहीं रहेगी। साल में अष्टमी, चतुर्दशी अष्टाह्निका, सोलहकारण, दशलक्षण या कोई व्रत करते हैं तो या साधु के आने पर कुएँ से पानी लाता है। पानी छानना मतलब जीवों को जहाँ से निकाला है, वहीं विधिपूर्वक बिना कष्ट दिए पहुँचाना। बिलछानी वो कर सकता है, जिसके हृदय में दया परिणाम हो, करुणा हो। पानी छानकर छन्ना उसी बाल्टी में बचे, पानी में न डालकर वरन छने पानी से धोकर या छन्ने के ऊपर पानी डालकर, फिर अलग स्थान पर निचोड़ना चाहिए। यदि उसी में बिना छना पानी डालकर निचोड़ते हैं तो जीवों को मसलना, निचोड़ना है। पुरुष वर्ग को भी भोजन पूछकर करना चाहिए कि आपने बिलछानी सही की है या नहीं, यदि नहीं पूछता है तो बिना छने पानी पीने का दोष लगता है। बिलछानी करना बिना पैसे का, कम समय में अत्यल्प मेहनत से किया गया धर्म है, असंख्यात् जीवों को अभयदान देने का फल है। नल के पानी की बिलछानी जो बड़ा हौद बना होता है, उसमें कर देना चाहिए, आपको प्रश्न उठेगा कि पुनः पुनः उसी में से होते हैं

तो अरे ऐसा ही कुएँ में होता है। एक बार तो हम उस पाप से बच जायेंगे। और जब 8 या 10 दिन में बड़ा हौद साफ करो तो प्रायश्चित कर लेना चाहिए। सबसे अधिक कंजूसी देखी जाती है तो पानी छानने के छन्ने में उसमें एक दो छेद हो जाते हैं तो नहाने धोने के पानी छानने में रख देते हैं तो क्या नहाने धोने का पानी छानते समय छेदों में से पानी नहीं निकलेगा? निकलेगा जीव हिंसा तो होगी चाहे पानी पीने का हो या नहाने का। पाँच वर्ष में एक साड़ी कम खरीदो तो भी अच्छा छन्ना रख सकते हो। ऐसे ही मंदिर में झाड़ू देखो तो कौन-सी 5 रुपये में तीन वाली, 5 लाख का मंदिर बनवा लेते हैं और 15-20 रुपये की झाड़ू नहीं ला सकते। झाड़ू भी मंदिर का उपकरण है, उससे भी अहिंसा धर्म का पालन होना चाहिए। एक वर्ष में दो झाड़ू लगेगी, एक महिला भी नियम ले ले तो भी जिंदगी भर झाड़ू के माध्यम से दया धर्म का पालन हो सकता है। संसार में सब मरेंगे कोई अजर अमर नहीं है, लेकिन हमारे निमित्त से, प्रमाद से मरेंगे तो हमें पाप लगेगा। जेटपम्प या हेण्डपम्प की भी जिसमें पानी भरा हो, उसी में करना चाहिए। धर्म के प्रति श्रद्धा है, अहिंसा धर्म का पालन करने के भाव हैं और आगे धर्म को सुरक्षित रखकर धर्म की परम्परा आगे तक चलती रही तो बिलछानी अवश्य करना चाहिए।

जैन के चार धर्म

जिनेन्द्र भगवान ने दो प्रकार का धर्म बताया है। एक श्रावक धर्म और दूसरा श्रमण धर्म। श्रमण धर्म, जिसमें पूर्ण रूप से पाँच पापों का त्याग होता है। श्रावक के धर्म में पाँच पापों का एकदेश त्याग होता है या शनैः शनैः पापों को छोड़ा जाता है। श्रावक के मुख्य रूप से चार प्रकार का धर्म आचार्य वीरसेन स्वामी ने कषायपाहुड में उल्लेखित किया है। दान, पूजा, शील, उपवास।

दान : जिस प्रकार नाली से पानी को यदि नहीं निकाला जाए तो वह सड़ जाता है। दुर्गन्धित हो जाता है, उसी प्रकार गृहस्थ यदि अपनी सम्पत्ति में से थोड़ा-थोड़ा दान नहीं निकालता है तो उसका वह एकत्रित धन नाश को प्राप्त हो जाता है। बात यह नहीं कि कितना दिया जाए, बात यह है कि जितनी जिसकी क्षमता हो - जैसे - लखपति हजार का। हजारपति सौ का दान करता है और रोज कमाकर खाने वाला यदि चवन्नी भी दान देता है तो बराबर है। लेकिन यह दान किसको दिया जाये? सही पात्र को दान देने पर वह बीज ही वट वृक्ष के रूप में फलित होता है। गृहस्थ को अपनी सम्पत्ति में से दान अवश्य ही निकालना चाहिए। गृहस्थी में रहकर प्राणी अनेक प्रकार के आरम्भ करके पाप का संचय करता है। इस पाप को नष्ट करने के लिए एक ही उपाय है। दान यह दीन संसार रूपी समुद्र से पार होने के लिए जहाज के समान है। उत्तम पात्र को दिया गया दान और उस दान में व्यय की गई सम्पत्ति फिर से प्राप्त हो जाती है। जिस श्रावक ने मोक्षाभिलाषी मुनि के लिए भक्ति पूर्वक आहार दिया है, उसने केवल मुनि को ही मार्ग में प्रवृत्त नहीं किया वरन् अपने अपको भी मोक्षमार्गी बना लिया है। जैसे देवालय बनाने वाला कारीगर निश्चय से देवालय के साथ ही ऊँचे स्थान तक पहुँच जाता है। वैसे ही भक्ति पूर्वक दिया गया दान श्रावक को उन्नत स्थान/मोक्ष में पहुँचा देता है। इस अद्वितीय पुण्य के विषय में इन्द्र भी इच्छा करता है। दान कहाँ करें ? जिनालय, जिनबिम्ब के निर्माण में,

पंचपरमेष्ठी की पूजा में, संयमी जनों को दान करने में, दुखी प्राणी पर दया करने में, अपने धन का प्रयोग करना चाहिए।

पूजा : जिनेन्द्र भगवानके रोज दर्शन करना, उनके बताये मार्ग पर चलना, उसके अनुसार अपनी चर्या करना पूजा है। देवदर्शन के विचार मात्र से ही उपवास का फल मिलता है। तैयारी प्रारम्भ करने पर 10 उपवास का, घर से निकल जाने पर 100 और दूर से ही मंदिर का शिखर दिखने पर 1000 उपवास का और मंदिर में प्रवेश करके बाहर से वेदी दिखने पर करोड़ों व साक्षात् जिनेन्द्र भगवानके दर्शन करने व चरणों का स्पर्श करने पर अनंत उपवास का फल मिलता है। हमारे स्नान करने कपड़े धोने का जो पाप है, यदि हम जाकर भगवानका अभिषेक कर लेते हैं। शुद्ध कपड़े पहनकर भगवानके दर्शन कर लेते हैं तो वह पाप धुल जाता है। पूजा करने की पात्रता डेढ़ माह के बच्चे से लेकर 90 वर्ष तक के प्रत्येक मानव को है। डेढ़ माह के बच्चे को माँ के द्वारा सुनाया जाने वाला णमोकार मंत्र, ऊँ, अरिहंत सिद्ध ही उसके लिए भगवानकी पूजा करना है।

शील : एक बार एक टीचर ने पूछा बच्चों को कुशील पाप कैसे समझायें? बच्चे को बताना चाहिए कि कोई भी लड़का-लड़की एकांत में बैठते हैं, बैठने पर उन्हें अच्छा लगता है, आपस में एक-दूसरे को टाफी या कोई भी खाने की वस्तु या गिफ्ट देते हैं, फूल देते हैं, बार-बार उस कार्य को करने में उन्हें अच्छा लगता है। यह कुशील पाप की प्रथम स्थिति है। फिर बाजार में घूमने जाते हैं। हँसी मजाक करते हैं। आपस में स्पर्श करते हैं या स्पर्श करने की सोचता है। यह सब शील धर्म को नष्ट करने वाला है। यदि कोई लड़की-लड़का 3-4 दिन तक एक साथ घूमते हैं, भगवान् की पूजा भी करते हैं तो भी लोग गलत सम्बन्ध ही जोड़ते हैं। जोड़ना भी चाहिए यह ऐसा ही है। स्त्री घी का घड़ा तो पुरुष अग्नि है। अग्नि के पास घी रखा हो और घी न पिघले ऐसा हो नहीं सकता है। इसी समय से ही बच्चों को यह कुशील पाप है। या लड़का लड़की के मित्र भी, लड़कों के लड़के और लड़की के लड़कियाँ ही होना चाहिए, ऐसा संस्कार देना चाहिए। उनका शील सुरक्षित रहे। सबसे ज्यादा

पाप एकान्त में लड़के-लड़की का मिलना, बैठना बात करना है। वर्तमान परिवेश में तो पिता भाई का भी विश्वास नहीं करना चाहिए।

एक बार एक राजा ने मंत्री से पूछा सबसे बड़ा पाप कौन-सा है, मंत्री ने बहुत सारे उत्तर बताएँ लेकिन राजा संतुष्ट नहीं हुआ। राजा ने कहा 7 दिन के अंदर बताना नहीं तो फाँसी की सजा। मंत्री चिंतित हो जाता है, घर में बेटी (उदासी का) चिंता का कारण पूछती है, मंत्री बता देता है, बेटी कहती है इसका उत्तर मैं तुम्हें सात दिन में बता दूँगी। मंत्री निश्चिंत हो जाता है-उसकी बेटी अच्छा खाना पीना शुरू कर देती है और अच्छा श्रृंगार करके पिताजी को भोजन परोसती है, पंखा झुलाती है। नैनादि को मटकाती है, पहले दिन कुछ भी विकार पिताजी में नहीं, दूसरे दिन आँखें उठती है, तीसरे दिन मन में विकल्प उठते हैं, चौथे दिन योजना बनती है और पाँचवें दिन तो योजना को कार्यान्वित करने की सोचता, छटवें दिन तो लड़की का हाथ पकड़ लेता है, बेटी कहती यही सबसे बड़ा पाप है। पिताजी एकान्त में किसी भी स्त्री-पुरुष का मिलना। जैसे -मोती का पानी एक बार उतर जाये तो दुबारा नहीं चढ़ता, उसी प्रकार स्त्री का शील एक बार गिर गया तो कभी पवित्र नहीं हो सकता। एक दिन शील का पालन करने में 9 करोड़ लाख जीवों को अभयदान देने का फल है। शील का पालन करने में मुख्य रूप से मानसिक बल की आवश्यकता है। यदि दम्पत्ति शादी के दिन से ही हर वर्षगांठ पर एक-एक दिन का ब्रह्मचर्य का पालन करें तो 31 वर्ष में भाई बहिन जैसे हो सकते हैं और कोई मेहनत या पुरुषार्थ नहीं करना पड़ेगा। शरीर या मन पर भार महसूस नहीं होगा। कहते हैं बूढ़ा बच्चा बराबर तो बच्चे जैसा वृद्ध निर्विकार हो जाये, वासना से रहित हो जाये तो बूढ़ा बच्चा बराबर है। प्रारम्भ के 25 वर्ष की भाँति ही अंतिम 25 वर्ष होना चाहिए, तभी तो चार प्रकार के आश्रम बनेंगे, नहीं तो मरते दम तक पत्नी साथ में रहती है।

उपवास : चारों प्रकार के आहार का त्याग करना और अपना समय विषय कषायों से दूर रहकर जिनेन्द्र भगवानकी भक्ति करना। बुंदेलखण्ड के उपवास जैसे नहीं, दूध फलादि खाकर कर लेते हैं।

प्रोषधोपवास : एकासन से धारणा पारणा पूर्वक उपवास करना। उपवास से पञ्चेन्द्रियाँ उत्तेजित नहीं होती हैं।

अपने घर से गन्ध, पुष्प, अक्षतादि ले जाकर जिनमंदिर में भगवानकी पूजा करना, नित्य-पूजा है। अथवा भक्तिपूर्वक चैत्य चैत्यालयों का बनवाना तथा जिनमंदिर के अधिकार में ग्रामादि का दान करना भी नित्य पूजा है। अथवा यथाशक्ति दान देते हुए मुनिराजों की पूजा करना यह भी नित्य पूजा है। मुकुट बद्ध राजाओं के द्वारा जो वृहद् समारोह के साथ पूजन होती है उसे चतुर्मुख या सर्वतोभद्र पूजन कहते हैं। हर्ष रूप जल से परिपूर्ण मनो व्यापार से रहित मैं यह विधि पूर्वक जिन भगवान की पूजा स्तुति को करके निर्मल केवलज्ञान रूपी नेत्रों से संयुक्त जिनेन्द्र भगवान के समान ही बन जाऊँगा। भगवान की पूजा से भगवान को कोई प्रयोजन नहीं है। करने वाला अपने कल्याण के लिए भगवान की पूजा करता है। लोक में भी खेती अपने ही प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए की जाती है न कि राजा का प्रयोजन सिद्ध करने के लिए यद्यपि किसान कर के रूप में धन राजा को देता है तो भी कभी कर देने के निमित्त से खेती नहीं करता है। पूजा के परिणामों से उत्पन्न अपने परिवार के पालनार्थ ही करता है। ठीक इसी प्रकार भक्त आपकी पूजा आपको प्रसन्न करने के लिए नहीं वरन् अपने आत्म परिणामों को निर्मल बनाने के लिए करता है। पूजा के परिणामों से उत्पन्न परिणामों की निर्मलता पाप कर्मों का रस क्षीण कर के पुण्य कर्मों को प्रबल बनाती है। उसके दुःख का नाश और सुख की प्राप्ति स्वयमेव हो जाती है।

यह संसारी प्राणी मोह के वशीभूत हो करके अनादिकाल से भ्रमण कर रहा है। इसे यह भी समझ में नहीं आ रहा है कि कब क्या करना चाहिए? कैसा करना चाहिए? कितना करना चाहिए और इस सबका फल क्या है? इन सब बातों का विचार नहीं करके इनसे उल्टा कर लेता है। अपनी सोच को विपरीत करता है। ये नहीं सोचता कि 84 लाख योनियों में से मनुष्य पर्याय मिलना दुर्लभ है। मनुष्य योनी ही है, जो सभी योनियों में श्रेष्ठ योनि है। मनुष्य यदि पुरुषार्थ करे तो स्वर्ग, मोक्ष जा सकता है और पुरुषार्थ हीनता से नरक,

तिर्यंचों में जा सकता है। नरकों में तो संयम नहीं ले सकता। तिर्यंचों में संयमासंयम लेकर भी ऊँचे स्वर्गों व मोक्ष नहीं जा सकता है। इतनी सामर्थ्य उसके पास नहीं है। देवों के पास शक्ति है, लेकिन संयम नहीं ले सकते हैं। रात्रिभोजन का त्याग नहीं कर सकते हैं। मनुष्य ही ऐसा है, जो सब कुछ कर सकता है। रात्रि भोजन त्याग कर सकता है और जो भी रात्रिभोजन का त्याग करता है, उसे 1 वर्ष में 6 महीने के उपवास का फल मिलता है। एक दिन में 24 घंटे होते हैं 12 घंटे का दिन और 12 घंटे की रात। 12 घंटे के भोजन का त्याग किया तो दो दिन में एक उपवास का फल मिलता है। यदि रात्रि में मात्र 8 बजे से प्रातः 4 बजे तक भी त्याग करता है तो 3 दिन में एक उपवास का फल मिलता है। दिन भर खाकर भी उपवास का फल मिलता है। त्याग करने के बाद दृढ़ता से नियम पालन करो तो उतना ही पुण्य मिलता है, जितना एक मंदिर बनाने तथा जिन प्रतिमा विराजमान करने में मिलता है। नियम तोड़ दे तो मंदिर तोड़ने का पाप लगता है। एक व्यक्ति ने स्वयं की घटना सुनायी कि माताजी मैं एक व्यापारी के घर गया, रात में भोजन करने बैठा लाइट चली गई थी, जहाँ भोजन के लिए बैठे थे, वहीं पास में अनाज के बोरे रखे थे, उसमें से तिरूला निकल कर पानी के गिलास में चढ़ गये, मैंने जैसे ही भोजन शुरू किया पानी पिया, पूरे में कुछ करकराने लगा तो सोचा क्या होगा। तत्काल प्रकाश में देखा तो तिरूला निकले। उस दिन से मैंने रात्रिभोजन का त्याग कर दिया। ऐसा सिर्फ उसी के साथ नहीं हर किसी के साथ होता है/हो सकता है। रात्रिभोजन चाहे वह हेलोजन का प्रकाश ही क्यों न हो? माँस खाने जैसा पाप लगता है। रात्रि का बना दिन में खाता है तो भी माँस खाने का पाप लगता है। यह मनुष्य पर्याय है। जहाँ कि हम रात्रिभोजन का त्याग कर ले। गाय सोच भी ले तो भी रात में खाने का त्याग नहीं कर पायेगी, क्योंकि तुम उसके मालिक हो वह स्वतंत्र नहीं है/पराश्रित है। उसके पास नियम पालने की क्षमता नहीं है। मनुष्यों के पास ही यह क्षमता है। देवों के पास क्षमता है, लेकिन वहाँ पर और भोगभूमि में दिन-रात नहीं होते हैं। यह सब व्यवस्थाएँ त्याग की/संयम की मात्र मनुष्य लोक में ही हैं। यहाँ भी मनुष्य है तो उसमें 0 प्वाइंट ही जैनी हैं। कई जातियाँ तो ऐसी

हैं, जो जानती ही नहीं हैं कि रात्रि में भोजन नहीं करना चाहिए। कई ऐसे भी हैं, जिनके पास इतना धन पैसा है कि रात में काम नहीं करें तो चल सकता है। दिन में आ करके भोजन कर सकते हैं। लेकिन नहीं करते। जो प्रमाद या मोह में आकर रात्रिभोजन करते हैं। पतिव्रता नारी वही होती है, जो स्वयं दिन में खाती है और अपने पति को भी खिलाती है। यदि उसका नियम होता है कि पति के खाने के बाद ही खाऊँगी तो पति सोचता है कि वह मेरे बिना खाएगी नहीं और बिना खाए उसका चेहरा कुम्हला जायेगा तो वो जल्दी आकर खा सकता है। यदि पत्नि पति को दिन की रोटी 2 बजे देती है या खिलाती है। या पति खाता है तो निश्चित है दूसरे समय की रोटी वह रात को 9-10 बजे ही खायेगा। इसलिए तुम लोग सुबह की रोटी समय पर 10-11 बजे कर लो तो शाम समय पर भूख लगेगी। समय पर भोजन करते नहीं हो और इधर-उधर की चीजें होटल की खाते रहते हो तो फिर भूख कहाँ से लगेगी ? और रात में खाते हो और फिर कहते हैं, डाइजेशन ठीक नहीं है या पेट खराब हो रहा है और घर की व्यवस्थाएँ भी बिगड़ती हैं। बाद में खाते हो तो बचा कुचा मिलता है। ऊपर-ऊपर का खाना हो तो पहले खाने बैठ जाओ, इसीलिए मैं कहती हूँ कि यदि पंगत में भी जाओ तो पहले बैठ जाओ, नहीं तो बाद में जूठा बचा कुचा खाने को मिलेगा, फिर दिन भर पत्नी को भी किचिन में लगा रहना पड़ता है। वो सोचती है कि इतनी मेहनत करके आये हैं तो गरम-गरम बनाकर खिला दो तो रात में भी बनाते हैं, गैस जलाते हैं, चीज तलते हैं तो फिर उसके साथ कभी-कभी मेंढ़क जैसी चीज भी तले जाते हैं। इसीलिए रात में तो खाना ही नहीं चाहिए। बारिश के समय में जीवों की उत्पत्ति अधिक होती है। रात में नहीं खाना चाहिए। उपवास करो तो पारणा में अच्छा-अच्छा खाने को मिलता है। सौंठ खाते हैं, तुम लोग सौंठ नहीं जानते हो पौष्टिक होती है। तुम लोग कुछ भी खाते हो, लेकिन पारणा में अच्छा ही मिलता है। इसीलिए तुम रात में न खाकर उपवास कर लिया करो।

एक चण्डालिनी थी। उसको धर्म में बहुत रुचि थी। वह कभी-कभी साधु के आने पर उनके दर्शन करने भी चली जाती थी तो कभी-कभी प्रवचन

भी सुनती रहती थी। एक बार उसने एक साधु महाराज से अपने आत्म कल्याणार्थ नियम माँगा तो महाराज ने उसे रात्रि में 8 से 12 बजे तक रात्रि भोजन त्याग करने को कहा तो वह कहती, यह नियम तो नहीं पाल पाऊँगी क्योंकि हम लोग रात में ही खाते हैं तो महाराज ने कहा ठीक है। 3 से 6 बजे तक एक पहर का त्याग तो कर सकती हो तो उसने कहा ठीक है महाराज। शुभाशीष ले लेती है। एक दिन उसका नियम का उसके पति को पता चल गया तो उसने रात्रि के 3 बजे ही भोजन करने को कहा। उसने मना कर दिया तो उसने जर्बदस्ती की तब भी नहीं खाया तो वह मारने पीटने लगा तब भी नहीं खाया। उसके पति को इतना गुस्सा आया और उसने इतनी बुरी तरह से मारा कि वह मर गयी और मरकर एक सेठ के यहाँ कन्या हुई। जो रात्रि में खाता है, वह निशाचर कहलाता है। अभी रात में खाते हो तो उल्लू, बिल्ली आदि बनोगे। तुम लोगों को अभी अच्छी-अच्छी भक्ष्य सब्जी मिलती है उनको न खाकर आलू-प्याज खाते हो तो फिर गरीबों के यहाँ जन्म मिलेगा, जहाँ मात्र प्याज और सूखी रोटी ही मिलेगी।

एक महिला मिली, जो जैनेतर थी, वो आयी बोली मुझे धर्म में रुचि है, धर्म सुना दो, धर्म करना चाहती हूँ, उसने कहा कि रात्रिभोजन छोड़ दो, बोली नहीं, हम खेत से रात में ही आते हैं तो रात में ही खाते हैं। रोज मंदिर जाती थी। मजबूरी से भी रात में भोजन किया है तो भी नरक में जाना पड़ता है। पाप लगता है। रात्रिभोजन भी नरक जाने का एक द्वार है। नरक में चले गए तो वहाँ अंधेरे में ही रहना पड़ेगा। वहाँ मात्र बदबूदार मिट्टी ही खाने को मिलेगी और कुछ नहीं मिलेगा। यहाँ अभी मनुष्य पर्याय मिली है। जैन कुल मिला है, मंदिर के पास रहते हैं। जहाँ सब कुछ कर सकते हैं, लेकिन यहाँ हम मंदिर नहीं जाते हैं। भगवानके दर्शन करते ही नहीं हैं। यहाँ भी ऐसी महिलाएँ होगी जो रोज मंदिर नहीं जाती होगी। कभी-कभी मम्मी-पापा मंदिर नहीं जाते और बच्चे मंदिर जाते हैं, आहार देते हैं, तब मम्मी-पापा भी संकोच से जाने लगते हैं। जो बाहर की व्यवस्था करते हैं, वो बाहर वाले ही बनते हैं। झाड़ू लगाने वाले चौकीदार बनोगे। श्रीफल के बाहर की तरह ही बनोगे अंदर की गिरी नहीं

बनोगे। इसीलिए धर्म बहुत दुर्लभ है। उसमें भी मनुष्य पर्याय, जिनकुल पाना भी बहुत दुर्लभ है, बड़ा कठिन है। जिनदर्शन करना, रात्रि भोजन का त्याग और पानी छानकर पीना, ये जैन का चिह्न हैं। सोचना हमारे पास कितने चिह्न हैं, भगवानके दर्शन करना बस धर्म है।

एक व्यक्ति था, जिसके गाँव में हम गये वो बोला माताजी मैं 60 वर्ष का हो गया, पहली बार आर्यिकाओं के दर्शन किए हैं। साधु के दर्शन भी बहुत दुर्लभ हैं। जब हाथ पैर नहीं चलेंगे तब समझ में आयेगी और बेटे से कहोगे तो आज नहीं कल, कल नहीं परसों कह-कहकर टालता रहेगा, तब भगवानके दर्शन की दुर्लभता समझ में आयेगी। कभी कर्मोदय से हाथ-पैर टूट गया तो 6-6 महीने तक बिस्तर पर पड़े रहोगे, तब बुद्धि जगेगी कि भगवानके दर्शन इतने दुर्लभ हैं। जब सास मंदिर नहीं जाती, तब दर्शन करने की रुचि वाली बहू की वेदना सुनो। खाते-पीते भी कुछ अच्छा नहीं लगता है उसे। जब 20-25 किलोमीटर दूर मंदिर होता है, तब मंदिर जाना कितना कठिन लगता है। यहाँ पास में जिनालय है तो तुम मंदिर नहीं जा पाते हो। एक बार भगवानके दर्शन करने से अनंत भव के पाप नष्ट हो जाते हैं। भगवानका अतिशय तुम्हारी श्रद्धा से दिखता है। वैसे तो भगवान्/तीर्थंकर के तो जन्म से ही अतिशय होते हैं। 34 अतिशय स्थायी होते ही हैं। यहाँ कुछ अतिशय तुम्हें दिख जाये तो कोई आश्चर्य नहीं है। कोई गाँव का वृद्ध जो रोज पूजा करता होगा, मंदिर आता होगा वह मरकर देव बनकर आ जाये और अतिशय दिखा सकता है। बुजुर्गों का कर्त्तव्य है कि अपने बच्चों को मंदिर जाने की प्रेरणा दें। बच्चों में धर्म के संस्कार डालें वो धर्म करेंगे तो उनके पुण्य का छटवाँ अंश भी तुम्हें मिल जायेगा।

पानी छानकर उसकी बिलछानी यथा स्थान पहुँचाने से 84000 साधुओं को आहारदान का फल मिलता है। बिना छने पानी से बिलछानी नहीं करना चाहिए। घर में बड़े सही तरीके से पानी छानें तो देखकर बच्चों में भी पानी छानने के संस्कार रहेंगे। बिलछानी सही तरीके से करोगे तो बच्चे भी सही तरीके से बिलछानी करेंगे। यद्वा-तद्वा नाली में या जमीन में नहीं करेंगे।

इन तीन नियमों का पालन गाँव में अच्छे से हो जाता है। गाँवों में शांति का जीवन रहता है। शांति से खाओ, पिओ, बैठो। गाँव में आपाधापी गाड़ी आदि की आवाजें नहीं आती। दूध पीते बच्चे को णमोकार मंत्र सुना दो, वो भी उनका मंदिर दर्शन व्रत हो जायेगा। बड़ा हो जाए तो दर्शन करवाना चाहिए। नित्य देव दर्शन करना, रात्रि भोजन का त्याग और पानी छानकर पीना यही हमारा धर्म है। जैनों के कर्त्तव्य भी यही हैं।

जिनेन्द्र भगवानके बताये रास्ते पर चलने वाले को रात्रि भोजन नहीं करना चाहिए। जो जिनाज्ञा का उल्लंघन कर रात्रिभोजन करता है, वह दोषों का घर बन जाता है। परलोक में भी दु:सह यातनाओं को सहता है।

सूर्यास्त के बाद भोजन करना माँस भक्षण के समान है, पानी पीना खून पीने के समान है। यदि स्वजन के मरने पर सूतक होता है तब भोजन नहीं करते फिर सूर्य भी हमारा बंधु है, उसके अस्त होने पर भोजन करने से क्या दोष नहीं लगेगा? अवश्य भारी पाप लगता है।

जो रात्रिभोजन का त्यागी होता है, वह परभव में धनवान, गुणवान, रूपवान बनता है।

नरजन्म की दुर्लभता : संसार सागर में रत्न गिर जाने पर उसका मिलना सुलभ है, परंतु मनुष्य पर्याय का मिलना बहुत दुर्लभ है। 84 लाख योनियों में भ्रमण करते-करते उच्च कुल मिलना बहुत दुर्लभ है। भारत में मंदिर बहुत हैं, लेकिन अधिक स्थान ऐसे हैं, जहाँ जिनमंदिर नहीं मिलता है। जिनालय में जाकर भी हमारा परिणाम यदि कहीं और चला जाए तो फिर क्या होगा? मंदिर में जाकर भी हमारी आँखें भगवानके अलावा किसी और को देखने लगे तो वह अनावश्यक है। हमारी जिह्वा जिसे मात्र भगवानका गुणानुवाद ही करना था, वह और कुछ कहने लगे/लगती है, क्योंकि जो हम 24 घंटे में घर पर रहकर नहीं देख पाते हैं, वो सब हमें मंदिर में दिख जाता है/देख लेते हैं। मंदिर में जन समुदाय रहता है, सभी प्रकार के लोग आते है, काणे, कुबड़े, गोरे, काले, सुंदर-कुरूप, छोटे-बड़े, घर में ये सभी नहीं रहते हैं। कई लड़के कहते

हैं कि मंदिर जाओ तो महिलाएँ हमें देखती हैं। मैं कहती हूँ कि तुम मंदिर में जाकर महिलाओं को देखते हो या भगवानको तुम अपनी पाँचों इन्द्रियों को महिलाओं के ऊपर लगाते हो, तभी तो तुम्हें पता है कि वह क्या कह रही थी, किसके लिए, किस संदर्भ में कह रही थी। तुम नियम रखो कि हम भगवानके अलावा किसी को नहीं देखेंगे तो मेरी गारंटी है, कोई तुम्हें नहीं देखेगा। 5 मिनिट के लिए तुम मंदिर जाते हो तो मात्र जिनवाणी के वचन भगवानकी स्तुति बोलो। तुम्हें और चीजें दिख रही हैं तो भगवाननहीं दिख सकते, क्योंकि संसारी जीवों की इन्द्रियाँ एक समय में दो काम नहीं कर सकती हैं। मंदिर में जाकर इतना नियम तो रखना ही चाहिए कि जहाँ भगवानदिख रहे हों, वहाँ पर बातें न करें। पञ्चेन्द्रिय के भोग नहीं बनाया यदि एक समय के लिए भी भगवानमें मन लग गया तो अनंतकाल का मिथ्यात्व खण्ड-खण्ड हो सकता है। आज से तीसरे भव मोक्ष जा सकता है। पंचमकाल में मोक्ष नहीं होना, परन्तु सम्यग्दर्शन तो प्राप्त कर सकते हैं। मोक्ष जाने की भूमिका तो तैयार कर सकते हैं। मंदिर में जाकर प्रत्येक जिनबिम्ब का दर्शन करना चाहिए। क्या पता किस बिम्ब के दर्शन करते समय/नमस्कार करते समय सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाए। यदि हम मंदिर में जाकर मात्र बड़ी-बड़ी प्रतिमाओं के दर्शन कर लेते हैं तो यह छोटी प्रतिमाओं का एक प्रकार से अविनय है। सरसों के दाने बराबर जिनबिम्ब भी हमारे अनंतकालीन मिथ्यात्व को खण्डित कर सकता है। नीति तो यही है कि सभी बिम्बों को हाथ जोड़कर, बैठकर नमस्कार करना चाहिए। वैसे सामान्य से हाथ जोड़कर आवर्त करते हैं, सभी करते हैं, लेकिन क्यों करते हैं, यह नहीं जानते, हमारे बड़े बूढ़े करते थे, सो हम करते हैं, कभी अपनी क्रियाओं के बारे में भी सोचना चाहिए। हाथ जोड़कर आवर्त मतलब वेदी में विराजमान सभी भगवानजनों को मेरा नमस्कार हो। संसार में भगवानके दर्शन बहुत दुर्लभ हैं, जब 2-3 दिन तक जिनालय नहीं मिलते हैं या जब वृद्ध हो जाओगे/शक्ति नहीं रहेगी बेटे से कहोगे सुबह का शाम, शाम की रात, फिर पुनः सुबह पर टालेगा। या जब बीमार हो जाओगे तो डॉक्टर रेस्ट कह देगा तो। वस्तु की दुर्लभता आवश्यकता पड़ने पर ही समझ में आती है।

जैसे पानी का मूल्य हमें कब समझ में आता है, जब हमें गर्मी में कुँआ पर जाने पर, हेण्ड पम्प चलाने पर भी पानी नहीं मिलता है। मारवाड/रेगिस्तान में आज भी कई लोग पानी के बिना तड़पते देखे जाते हैं, मौत के मुँह में जीते दिखते हैं/गर्मी में हम पानी का उपयोग सोच-सोचकर करते हैं, क्यों बड़ी मेहनत से लायें हैं और वो भी पूरा नहीं मिला है और सर्दी व बारिश में जैसा मन चाहा, वैसा फेंकते रहते हैं, लेकिन हिंसा का/पाप का कर्म बंध करते हैं उसका मौसम से कोई मतलब नहीं है, पाप तो लगेगा ही। जो विवेकवान होता है, पाप से डरता है। अहिंसा धर्म का पालन करना चाहता है वह तो पानी अधिक हो, सुलभता से मिलता तो भी कम उपयोग करता है, वो जानता है, पानी की एक बूँद में असंख्यात त्रसकायिक जीव होते हैं।

हिंसा का सम्बन्ध हमारी प्रमाद वृत्ति से है जीव मरे या न मरे इसलिए बहेलिया, धीवर को महान् हिंसक कहा गया, ये पूरे दिन जाल फैलाकर जाते हैं, भले ही एक पक्षी या मछली न फँसें तो भी पूरे दिन जीवों के मारने का पाप लगता रहेगा। इसलिए हम उनकी कोई वस्तु काम में नहीं ले सकते।

धर्म हमारे अपने भावों से विवेक से होता है। सुबह से शाम तक जितना काम कर रहे हैं, उसमें हिंसा नहीं हो तो हमारा धर्म है। हर काम में सोचो कि हमारा विवेक कितना है, तभी अहिंसा धर्म होगा। जीवन में धर्म लाओ, विवेक सीखो, विवेक लाओ तभी कल्याण होगा।

धर्म मुश्किल से मिलता है- इस संसार में संसारी प्राणी को भौतिक वस्तुएँ बार-बार मिल जाती हैं/मिल सकती हैं। लेकिन धर्म एक ऐसी चीज है, जो कभी कभार पुण्य योग से मिलता है। मिल पाता है। उसी धर्म को आज से लगभग 2600 वर्ष पूर्व महावीर भगवान ने बताया था। वह धर्म पाँच पाप के त्याग रूप है। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह, ये पाँच पाप कषाय मंद में गृहस्थी में रहते हुए भी नहीं छूट सकते हैं।

घर कारागृह है। जिस प्रकार जेल में रहने वाले को नहीं चाहते हुए भी अनेक कार्य करने पड़ते हैं, जेल में वो सब काम कराये जाते हैं। जिनको कभी किया नहीं और जिनके करने में तकलीफ भी होती है। चाहे वह मंत्री हो या सेठ या सामान्य व्यक्ति हो। सभी को पूर्ण काम करना पड़ता है। इसी प्रकार

घर में रहते हुए पाप नहीं करना चाहते हुए भी पापात्मक सभी काम करना पड़ते हैं। पापी भी पाप करना नहीं चाहता है। लेकिन कभी-कभी परिस्थितियाँ तो कभी-कभी खोटे संस्कार, खोटी संगति, अज्ञानता भी पापात्मक काम करवा देती है। साधु का गाँव में आना-जाना अलग बात है, और साधु का दिल में वास करना अलग बात है। हम हमेशा सोचते हैं कि साधु हमारे यहाँ आए। जबकि धर्म सुनने साधु के पास जाना चाहिए। गाँव में साधु के आने पर भी हम सोचते हैं कि आज प्रवचन नहीं कल सुनने चले जायेंगे। जब उनका विहार होने लगता है तो कहते हैं कि महाराज आज नहीं कल चले जाना। हमने अभी लाभ नहीं लिया है। हमारे जीवन में कितनी अहिंसा है, हम किस प्रकार के पाप कर रहे हैं। कहाँ पाप से छूट सकते हैं। कभी विचार करना, हम पूरे दिन में कितनी बार आवश्यकता पड़ने पर पाप करते हैं और कितने अनावश्यक पाप करते हैं। एक झूठ को सत्य करने के लिए कितनी बार झूठ बोलते हैं। कभी-कभी अपनी इज्जत बचाने के लिए, बात को सही करने के लिए भी झूठ बोलते हैं। असत्य यदि अनावश्यक ही बोला है तो पाप का आस्रव ही होगा और यदि आवश्यकता पर भी असत्य बोला है तो भी पाप अधिक पुण्य कम रूप मिश्रित आस्रव होगा। देव, शास्त्र, गुरु के सामने ही असत्य बोला है तो फिर उस पाप का प्रक्षालन कहाँ करेगा? संसारी जीव की ऐसी आदत ही है कि धर्म के नाम पर बहाने बनाता रहता है। कभी धर्म सुनने का भाव आता ही नहीं है कभी आ जाये तो वहाँ जाकर भी पंचेन्द्रिय के विषयों में उलझने लगता है। धर्म का मिलना, सुनना और तदानुसार आचरण करना उत्तरोत्तर दुर्लभ हैं, पुण्य से धर्म मिल गया, बताने वाले मिल गये तो कुछ धर्म कर लो ताकि संसार-सागर में डूबने से बच जायें। अपना कल्याण कर सकें।

अहिंसा का फल
(जन्माष्टमी)

आज उस पुण्यशाली आत्मा का जन्मदिन है, जिसको जन्माष्टमी के नाम से जाना जाता है। उस व्यक्ति ने पूर्व भव में उस धर्म को धारण किया था, जिसके माध्यम से वह स्वर्ग के भोगों को भोगकर यहाँ आकर त्रिखण्डाधिपति बन गया था। कृष्ण नारायण ने पूर्व भव में हजारों वर्ष तक उस अहिंसा धर्म की/ दया धर्म की/करुणा भाव की आराधना की थी, अपने हृदय में धारण किया था। उसी का फल वहाँ से स्वर्ग चला गया और स्वर्ग से इस मध्यलोक में आकर भगवान के रूप में पूजा जाने लगा, आज उसी कृष्ण नारायण की जयंती मनाई जाती है। पूरी हिन्दू समाज उन्हें भगवानके रूप में पूजता है। पूजना अलग बात होती है, पूजा करना बाह्य विधि है, बाहर के कार्यक्रम हैं, रूढ़ी भी होती है। लेकिन उनके चरणों की आराधना, उपदेशों का परिपालन हृदय में होता है। उनके समान दया, करुणा भी यदि हिन्दू समाज में आ जाये तो देश के कत्लखानों की बढ़ती संख्या तथा दिन प्रतिदिन बढ़ रही हिंसा में प्रतिबंध लग सकता है। हम भगवान की आराधना करते हैं, लेकिन उनकी बात नहीं मानते हैं, आराधना करने के बाद भी उनके उपदेशों को हृदय में धारण नहीं करते हैं।

विहार करते समय हम सभी एक मंदिर के पास बगीचे में रुके हुए थे, उस समय वहाँ दो लड़कियाँ कुछ फूल, अगरबत्ती लेकर, कपूर लेकर, घी का दीपक लेकर भगवान की पूजन आरती करने आई। भगवान राम का मंदिर था। वे दोनों बहिनें पूजा कर रही थीं, हम लोग बाहर बैठे हुए थे। एक लड़की बाहर आती है, उसको ऐसा लगा कि ये लोग कौन हैं, नये हैं पहले कभी ऐसे लोगों को नहीं देखा है। इनसें कुछ बात करना चाहिए, वो पास आकर बैठ गयी, बात करने लगी, उसी प्रकरण में उससे पूछा कि आप लोग किसकी आराधना करती हो, वह बोली रामचंद्र भगवान की हम हर मंगलवार को व्रत करते हैं, यहाँ दीपक लगाने, अगरबत्ती लगाने, फूल चढ़ाने, जाप करने आते हैं। दूसरा प्रश्न

पूछा आप लोग किस समाज के हैं? उसने कहा हम राजपूत हैं, राजपूत लोक में उच्चकुल माना जाता है। तब पूज्य माताजी ने पूछा आप लोगों के यहाँ माँसाहार भी चलता है, हाँ चलता है, मैं कहती हूँ कि भारत के जितने भी धर्म हैं, जितने भगवान हैं, जितने भी भगवान के भक्त हैं, यदि वो माँसाहार करते हैं, शराब पीते हैं तो उन्हें भगवानको स्पर्श करने का कोई अधिकार नहीं है। चाहे वह राम हो, कृष्ण हो, विष्णु हो, शंकर हो, महावीर हो, बुद्ध हो भगवानतो भगवान होते हैं।

जो कषायों से रहित होते हैं, पाँच इंद्रियों के विजेता होते हैं, जो सभी प्राणियों का हित करने वाले होते हैं, वही वास्तव में भगवान होते हैं। किसी का भगवान अपने भक्तों का अहित करने वाला नहीं होता है। यदि भगवान ही भक्त का अहित करने लगा तो फिर संसार में हित कौन करेगा? संसार में सज्जन पुरुष भी परस्पर में हित करते हैं। संसारी प्राणी हित भी करते हैं अहित भी करते हैं। यदि प्रसन्न हो जाते हैं तो हित करते हैं, क्रोधित हो जाते हैं, तो अहित कर देते हैं। लेकिन भगवान कभी भी ऐसा नहीं करते हैं। भक्तों से नाराज होकर दुखी नहीं करते, वरन् हमेशा उनके दुःखों को दूर करते हैं। दूर करने का प्रयास करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति का कोई न कोई अपना भगवान होता है। और जब वह दुःख से दुखी हो जाता है, त्रसित, पीड़ित हो जाता है, जब उन्हें अस्पताल में शांति नहीं मिलती है। औषधि से चैन नहीं मिलता है, उस समय भगवान के चरणों में जाकर बैठ जाता है। उसे विश्वास रहता है डॉक्टर औषधि, मंत्र-तंत्र से ठीक नहीं कर रहा है, नहीं कर पायेंगे लेकिन भगवान निश्चित रूप से सुखी कर देंगे, दुःख मिटा देंगे। वह तीन लोक के भगवान होते हैं। वह भगवान मनुष्य जाति का नहीं होता है, वह प्राणी मात्र को सुखी करने वाला होता है। जो प्राणी मात्र के प्रति सुख की भावना रखता है, वह माँसाहार कभी नहीं कर सकता है। आज कृष्ण के जन्म के पहले जिसका साम्राज्य चल रहा था, जो समाज की बात को क्या, प्रजा की बात क्या? अपने माता-पिता को भी भारी दुःख दे रहा था। उसने अपने माता-पिता को राजमहल के दरवाजे पर, कारागृह में बंदी बनाकर तिरष्कृत करते हुए बंद करके रखा था। यह माँ-बाप का तिरष्कार कंस के माध्यम से चला आ रहा है। वह कंस अपनी बहिन देवकी के

सभी पुत्रों को मारने के लिए कटिबद्ध था, उसका संकल्प था कि एक भी पुत्र को जीवित नहीं रहने दूँगा। क्योंकि ऋषि ने बताया है कि देवकी के पुत्र के द्वारा तुम्हारा मरण होगा। तुम अत्याचारी हो, तुम संसार को कष्ट दे रहे हो। प्रजा को दुखी कर रहे हो, इतका तिरष्कार कर रहे हो, इसका बदला और तुम्हें मारने वाला इस देवकी का पुत्र होगा। यह सुनकर कंस सावधान हो गया। वह मन में संकल्प कर लेता है कि मैं देवकी के पुत्र को जीवित नहीं रहने दूँगा। वह देवकी के 6 पुत्रों को मारने का प्रयास करता है। कहते हैं -

जाको राखे साईयाँ मार सके न कोय।
बाल न बांका कर सके जो जग बैरी होय॥

लेकिन देवी के माध्यम से वे जीवित रह जाते है। कंस की दृष्टि में तो वे मर चुके थे। एक सेठ के यहाँ उनका पालन-पोषण हो रहा था। वह सातवाँ पुत्र जब गर्भ में आया था तो कंस और भी सावधान हो गया, उसने कृष्ण के माता-पिता को जेल में डाल दिया था। यह कहा जाता है, जो पुण्यशाली आत्मा होता है, जिसका भाग्य अच्छा होता है। इस संसार में पुण्य कमाकर यहाँ आया है उसको कितने भी साधन जुटा लिया जाये, वह मर नहीं सकता है। वह मौत के मुँह में जाकर भी बचकर निकल सकता है। क्योंकि पूर्व में अभयदान दिया था, सबसे बड़ा दान अभयदान है और यह अभयदान अहिंसा धर्म माध्यम से पलता है। जो दूसरे जीवों की रक्षा करता है, उसकी रक्षा ऊपर वाला करता है, जो दूसरे जीवों की रक्षा नहीं करता उसकी रक्षा उसके माँ-बाप, पड़ोसी भी नहीं करते हैं। क्योंकि वह दूसरों को पीड़ा देता है। जो दूसरों की रक्षा करता है, उसकी रक्षा तीन लोक के नाथ भी सदैव करते हैं। वह आत्मा भी पूर्व भव में अहिंसा व्रत का पालन करता हुआ आया था, वो देख करके चलने वाला था, उसने कभी अभक्ष्य का भक्षण नहीं किया था, उसने कभी भी अपनी जिह्वा से कठोर, कड़क, असत्य भाषण नहीं किया था, उसने कभी एक सिक्का भी चुराया नहीं था, उसने कभी अब्रह्म का सेवन नहीं किया था, उसने दुनिया को दुखी करके परिग्रह का संचय नहीं किया था, उसी का फल था कि वह मारने के लिए शत्रु के यहाँ उत्पन्न हुआ था। उत्पन्न होने के बाद भी वह मर नहीं सकता था क्योंकि अहिंसा का फल उसके साथ अच्छी

आयु बाँध करके लाया था। इसीलिए उसे कंस ही नहीं सौ कंस भी इकट्ठे होकर नहीं मार सकते, यह अहिंसा धर्म का प्रभाव है। अहिंसा व्रत का फल इतना महान् हैं कि संसार के लाखों व्रत एक तरफ रख दो तो भी एक जीव की रक्षा का फल अधिक होगा। महीनों-महीनों के उपवास एक तरफ रख दिये जायें, भोजन करना बंद कर दें, वायु के ऊपर जीना शुरू कर दें, खड़े होकर जिंदगी भर व्रत धारण कर लें, जाप कर लें, मौन धारण कर लें, इसका इतना फल नहीं जितना एक जीव की रक्षा का फल है।

कृष्ण ने पूर्व भव में अनंत जीवों की रक्षा की थी। उसने कभी बिना छने पानी का उपयोग नहीं किया था। वह आत्मा जैन दिगम्बर साधु था। दिगम्बर जैन साधु की चर्या में हिंसा का अंश मात्र भी स्थान नहीं है। दिगम्बर जैन साधु की चर्या सुबह से लेकर रात्रि विश्राम तक कहीं भी और सोने से उठने तक अहिंसा से जुड़ी हुई है। उसी का फल है कि वह यहाँ आया और नौ माह में जन्म लेने वाले बालक ने सात माह में ही जन्म ले लिया, कंस 9 माह का इंतजार कर रहा था, लेकिन वह पुण्यशाली आत्मा सात माह में ही इस धरा पर आ गया, क्योंकि धरा पर अत्याचार की बहुलता हो गयी थी, जहाँ माता-पिता का अपमान हो रहा था, जहाँ माँ-बाप को त्रस्त किया जा रहा है, वहाँ दूसरे और अत्याचार की क्या बात है? वह कृष्ण माता-पिता का सम्मान कराने के लिए, अहिंसा धर्म का प्रचार-प्रसार करने के लिए दो माह पहले ही धरा पर आ गया। प्रजा को सुख-शांति दिलाने के लिए आ गया। जैसे ही उस बालक का जन्म हुआ। जेल की सलाखे, जेल के दरवाजे का ताला, दरवाजा तक खुल गया। पुण्यशाली आत्मा के जन्म का ऐसा ही प्रभाव है। जन्मते ही घर में, नगर में, उस स्थान पर उसके पुण्य का प्रभाव आ ही जाता है। जन्मते ही जेल के दरवाजे खुल जाते हैं और वह वसुदेव और बलभद्र सोचते हैं कि कंस को इस बात की जानकारी नहीं होना चाहिए। नहीं तो यह बालक मारा जायेगा पहले 6 पुत्र मार दिए गए हैं, संसारी जीव किसी को मारने से नहीं डरता है, मारते समय हृदय में दया भी नहीं आती है, लेकिन जब मरने का नंबर आता है तो सोचता है कहा चला जाऊँ, कौन-सी गुफा में छुप जाऊँ, दरवाजे बंद करके बैठ जाऊँ या ऐसी कोई औषधि मिल जाए, जिससे अजर अमर हो जाऊँ,

लेकिन दुनिया में आज तक कोई अजर अमर नहीं हुआ है, न होगा जो जन्म लेता है वो निश्चित मरता है। यह अकाट्य सत्य है। यह कभी खंडित नहीं हो सकता है, कोई भी खंडित नहीं कर सकता है। बड़े-बड़े महापुरुष भी इस संसार में जन्मे, प्रजा का उपकार किया, देश में अहिंसा धर्म का प्रचार किया, सत्य धर्म जगत् में फैलाया, वो भी इस संसार से चले गये, वो यहाँ रहते तो आज यह हिंसा का ताण्डव नृत्य हमारे देश में क्यों होता? अहिंसा की पुकार करते-करते ही उन्होंने देश को स्वतंत्र करवा दिया। उनके जाने के बाद प्रजा की बुद्धि फिर गयी, स्वतंत्रता के साथ-साथ स्वच्छंदता भी आ गयी। और इतनी स्वच्छंदता आयी कि अपने इष्ट देवता के सिद्धान्तों का भी उसने लोप कर दिया। आज व्यक्ति भगवान की आराधना करता है और शराब भी पीता है, माँस भी खाता है, व्यक्ति को खुले आम मार देता है। मारते हुए भी राम का नाम लेता जाता है। अरे यह भी नहीं मालूम है कि किसका नाम ले रहा है और काम क्या कर रहा है। जो राम का नाम लेता है। कृष्ण का नाम लेता है उसको माँसाहार का, शराब का सेवन कभी नहीं करना चाहिए यदि इनको नहीं छोड़ता है तो उसे भगवान का नाम लेना भी बंद कर देना चाहिए, वह भगवान के नाम को अपवित्र कर रहा है, क्योंकि उसका मुँह, उसका शरीर उस शराब और माँसाहार से अपवित्र हो गया है। मंदिरों में व्यवस्थायें हो जानी चाहिए कि भगवान के सामने फूल चढ़ाने का वही अधिकारी है, जो माँसाहार का सेवन नहीं करता है, जो शराब नहीं पीता है। वो हमारे मंदिर के अंदर आकर आराधना कर सकता है, किसी का भी मंदिर हो मंदिर की पवित्रता भी उनके भक्तों के आधार से बनी रहती है और यदि अपवित्र भक्त शराब पी करके, माँसाहार करके भगवान की आराधना कर लेता है तो वह (मंदिर का माहौल भी) मंदिर का वातावरण भी अपवित्र हो जाता है। भावों का संप्रेषण हमेशा-हमेशा प्रत्येक पदार्थ के ऊपर होता रहता है। श्रवणकुमार माता-पिता को लेकर यात्रा करवाने ले जा रहा था, रास्ते में सरयू नदी आती है, उसके तट पर पहुँचते हैं, वह कहता है कि मैं कब तक इन अंधे माता-पिता को कब तक कंधों पर ठोता रहूँगा, वही छोड़ने लगता है। माता-पिता कहते हैं, बेटा क्या हो गया? इतने दिन से तो तू हमें कंधों पर लादकर ला रहा है और अब बिल्कुल

पास में तीर्थ आ चुका है और तुम मना कर रहे हो यह कौन-सा स्थान है? सरयू नदी है। माता-पिता समझ जाते हैं, यह स्थान है जहाँ पर परशुराम ने अपने माता-पिता का मर्डर/वध किया था। उसका प्रभाव था, यहाँ पर तो माँ-बाप के प्रति भाव खराब होते ही हैं, वो कहते हैं, बेटा सरयू नदी पार करा दे फिर छोड़ देना। बेटा जैसे ही उन्हें दूसरे तट पर लेकर पहुँचता है तो उसे अपने आप पर ग्लानि आ जाती है। यह मैंने क्या किया माता-पिता को छोड़ने के भाव कर लिए। सैकड़ों वर्ष बीत जाने पर भी वो हत्या का आभामण्डल वहाँ बना हुआ था। जिससे श्रवणकुमार जैसे पवित्र हृदय में भी कलुषित भावना पैदा कर दी। अतः आभामण्डल व्यक्ति दिल दिमाग पर कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य डालता है। इसलिए तो मंदिर में जाने पर व्यक्ति को शांति की अनुभूति होती है। क्योंकि वहाँ जो बैठा है, जिसका प्रतिबिम्ब रखा हुआ है, वह अहिंसा का पुजारी था, वह मोक्ष का पुजारी था, करुणा का स्रोत था, दया की प्रतिमूर्ति था, इसीलिए वहाँ जाते ही हमारी कषायें भी शमन होने लगती हैं। हमारे परिणामों में पवित्रता आने लगती है। मन विशुद्ध हो जाता है, प्रशस्त हो जाता है। प्रसन्नता की अनुभूति होने लगती है, आज हम अपने भगवान के दर्शन करने आये हैं। धीरे-धीरे ऐसे ही मंदिरों में शराबी, माँसाहारी जाते रहेंगे तो वहाँ का वातावरण भी मंत्रों का जाप का प्रभाव भी उन लोगों के कारण अपवित्र हो जायेगा, वे दोनों बालिकाएँ माँसाहार करती थीं और भगवान राम के सामने फूल चढ़ाती थीं, आरती करती थीं, जबकि राम भगवान की आराधना भक्ति करने का कोई अधिकार नहीं था, उन्हें जब भगवान राम ने 14 वर्ष तक वनवास में थे उनके पास भोजन की भी व्यवस्था नहीं थी, भोजन तो क्या रहने की भी व्यवस्था नहीं थी, कोई नौकर चाकर, हाथी-घोड़ा कुछ भी नहीं था, तब भी कभी माँसाहार नहीं किया, मछली नहीं खाई, अण्डे नहीं खाये, न ही कभी शराब पी। कृष्णजी ने भी माखन चुरा-चुरा कर खाया, लेकिन कभी शराब नहीं पी। मक्खन खाने योग्य है, शराब पीने योग्य नहीं है। हम कृष्ण जयंती मना रहे हैं, यदि कृष्ण के अनुयायी माँस खाते हैं, शराब पीते हैं तो उन्हें बैठकर सोचना चाहिए कि हम किसके भक्त हैं, किसकी जयंती मना रहे हैं और काम कौन-सा कर रहे हैं? हमारी जिंदगी हमारा जीवन मात्र पूजन आराधना से

पवित्र नहीं हो जायेगा जैसे औषधि का मात्र नाम लेने से रोग ठीक नहीं होता, उसी प्रकार भगवान का नाम लेने मात्र से पवित्र नहीं होगा। उनका बिम्ब रखने मात्र से पवित्र नहीं होगा, उसके सामने फूल चढ़ाने से पवित्र नहीं होगा, जयंती मनाकर कार्यक्रम करने जुलूस निकालने मात्र से पवित्र नहीं होगा वरन् जब तक हम उनके सिद्धान्त, आचार-विचार अपने जीवन में नहीं लायेंगे, तब तक पवित्र नहीं हो सकता है। भगवान का सिद्धान्त कभी माँसाहार नहीं हो सकता है। महापुरुषों का सिद्धान्त झूठ बोलना, गला घोंटना नहीं वरन् सत्य बोलना, अहिंसा धर्म का पालन करना है। जब तक हमारे अंदर हमारे इष्ट का सिद्धान्त सत्य, अहिंसा नहीं आयेगा, तब तक हमारा कल्याण इस भव तो क्या? अगले भव में भी क्या? अनंत भवों तक नहीं हो सकता है। हम कितने ही जप -तप कर लें, अनुष्ठान कर लें। जैसे ही कृष्ण जन्म लेते हैं, जेल से भागने का रास्ता अपने आप हो जाता है। कहते हैं जन्मजात बालक को हवा न लग जाये बीमार हो जायेगा। प्रसूति गृह बंद रखा जाता है, बच्चे को जल्दी से घूंटी पिला दी, लेकिन उस बच्चे की कोई व्यवस्था की आवश्यकता नहीं पड़ी थी, जन्म लेते ही न घूटी पिलाने की बात, न वस्त्र पहनाने की बात, वहाँ तो मात्र जीवन की बात थी। यद्यपि वसुदेव को यह पहले मालूम था कि यह बेटा मर नहीं सकता है। स्वप्न के माध्यम से, नगरी की रचना के माध्यम से संकेत मिल चुके थे। तीन खण्ड का अधिपति जन्मा है, फिर भी माता-पिता का मोह, स्नेह एक ऐसा होता है कि वह अपने बच्चों को किसी प्रकार से तकलीफ नहीं देना चाहते। वे दोनों उस बच्चे को लेकर निकल आते हैं, आधी रात में जाते-जाते रास्ते में नदी आ जाती है। इतनी बारिश हो रही थी, मौसम खराब था, नदी आ रही थी, आज के दिन वो जन्मे थे, उस बाढ़ से युक्त नदी के पुल पर भी रास्ता मिला, ऐसे जैसे-सड़क पर रास्ते में चल रहे हों, उस बालक के पुण्य प्रताप से उन वसुदेव बलभद्र में भी इतनी शक्ति आ गयी कि वे भी उस नदी के बीच में से चल रहे थे। पुण्यशाली की देव भी व्यवस्था कर देते हैं और पापी जीव की व्यवस्थायें समाप्त हो जाती हैं या देव आकर समाप्त कर जाते हैं। पापी अच्छी से अच्छी औषधि खाकर भी मरण को प्राप्त हो जाता है और पुण्यशाली धूप की चमक से या एक दो कालीमिर्च आदि खाकर भी पूर्ण स्वास्थ्य हो जाता है।

वह साधना करके आया है, वह पुण्यशाली है उसने पुण्य अहिंसा धर्म का पालन करके, एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीवों की रक्षा करके आया है। एक तो वह बीमार होता ही नहीं कभी कुछ होता भी तो उसका पुण्य आगे-आगे व्यवस्थाएँ करेगा वह नदी भी रास्ता दे देती है, वे दोनों उसे लेकर उस गाँव में पहुँच जाते हैं, जहाँ पर नंद ग्वाला रहता था। उस बालक को देकर उसके यहाँ जो लड़की जन्मी थी, उसे लेकर वापस आ जाते हैं। उस लड़की को देवकी के पास रख देते हैं। देवकी ने सात महीने में बालक को जन्म दे दिया है तो कंस शीघ्रता से वहाँ पहुँच जाता है। जब देखा लड़की जन्मी मन में शंका होती है। लड़की कैसे हो गई, ऋषि के वचन झूठे नहीं हो सकते, ऋषि ने कहा था, देवकी का पुत्र मेरा हत्यारा होगा। सोचता है हो सकता है कि इस लड़की का पति मेरे को मार दे, इसीलिए उस लड़की की नाक चपटी कर दें, यह लड़की सुंदर नहीं रहेगी, कोई राजा महाराजा इससे विवाह नहीं करेंगे और राजा महाराजा नहीं होंगे तो मुझे कोई मार नहीं सकता है। वह कंस अपने मन में प्रसन्न होता है। लेकिन जिसके मन में पाप होता है उसका पाप का घड़ा कभी छुप करके नहीं रहता है। जिसके माध्यम से जिसकी मौत लिखी होती है, वह कभी कोई टाल नहीं सकता है।

वह वर्तमान में पाप कर रहा था। पूर्वभव का पुण्य था, उस पुण्य के जोश में, मद में, प्रजा को त्रसित कर रहा था, लेकिन उसका मद उसका मरण बुला रहा था। वह सावधान रहता था, उसके मन में शंका बनी रहती थी, कहीं कोई न कोई गड़बड़ जरूर हुई है, वह खोजबीन करने के बाद भी उसे सामान्य रूप से उसको वह बच्चा प्राप्त नहीं हो सकता था। पुण्यशाली जीव सामने खड़ा हो तो भी मारने वाले को नहीं दिखता है, उसका पुण्य उसकी ओट बनाये रखता है। भविष्य में वह श्रीकृष्ण बड़े होकर के तीन खण्ड के अधिपति बनते हैं और कंस की मौत का कारण बनते हैं और जनता को दुखों से उठाकर सुख में धरते हैं। आज भी उनका जीवन समाज में जीवंत है। लोग उनका नाम लेते हैं, उनकी आराधना करते हैं, लेकिन उनके सिद्धान्तों को एक बार ग्रहण करके देखते, एक बार उनके जीवन की चर्याओं को देख लें, उनकी दया, करुणा, वात्सल्य को देख लें।

कहते हैं श्रीकृष्ण ने गायों की रक्षा के लिए गोवर्धन पर्वत को उठा लिया था। अपनी, अपने परिवार के लिए नहीं वरन् गायों की रक्षा के लिए। यदि संसार से गाय समाप्त हो गई तो कुछ भी नहीं रहेगा। देश में, विश्व में, समाज में, आपकी दुकान में, आपकी भोजनशाला में, घर में कुछ भी नहीं रहेगा। मध्यप्रदेश में गाय के रहने के स्थान को सार कहते हैं, पूरी जिंदगी का, पूरे जीवन का निर्माण सार है। गाय के माध्यम से ही रसोई घर सुशोभित होती है। दही भी, छाछ भी, हमें गाय के माध्यम से मिलता है। अतिथि सत्कार भी दूध, घी के माध्यम से होता है। उस गाय का बछड़ा हमारी खेती में काम आता है। जहाँ खेती नहीं होगी, फसल नहीं होगी तो हमारे घर में क्या बचेगा? भले ही वो कपड़े हों, कपड़े भी कपास की फसल से बनते हैं। भले ही प्लास्टिक हो, टेरीकोट हो, सभी वनस्पति के माध्यम से ही प्राप्त होता है। गाय के मूत्र से, गोबर से भी खेती खाद पाकर फलीभूत होती है। इसीलिए हमारे पूर्वजों ने कितना सुंदर नाम दिया है गाय बाँधने के स्थान को 'सार'। पहले घर-घर में सार पाये जाते थे, इसीलिए निस्सार कत्लखाने नहीं थे। आज सार समाप्त कर दी तो कत्लखाने खुल गये। घर में सभी को सार पसंद नहीं है, कौन साफ करेगा, कौन चरायेगा, कौन बाँधेगा, इतना काम कौन करेगा? आज तो पैकिट का दूध लाकर चाय बनाकर पी लेते हैं। वह दूध कहाँ से आता है? कितना मिलावट का आता है? उसमें कितना हड्डी का चूरा, मछली का पाऊडर तक उसमें मिलाया जाता है। भारत में गर्वमेंट की तरफ से ये नियम नहीं बना। अमेरिका की सरकार ने तो यह नियम बना दिया है कि बिना फिश पाउडर मिलाए दूध बेच नहीं सकते हो, जिस प्रकार भारत में नमक नहीं बेच सकते, आयोडिन मिलाए बिना। उसी प्रकार वहाँ दूध का नियम बन चुका है। भारत में भी पैकिट का दूध कुछ वर्षों में माँसाहार की श्रेणी में आ जायेगा। बाहर से शुद्ध का लेबल लगा हुआ है लेकिन उसमें भेड़िये का ऊँट का दूध भी मिला हो सकता है। उस दूध को पीने के कारण सैकड़ो बीमारियाँ भी उत्पन्न हो सकती हैं। लेकिन हम अपने घर में सार नहीं बना पा रहे हैं, क्योंकि सार रखेंगे तो फिर काम करना पड़ेगा और काम हमारे से होता नहीं हैं, आज तो हर काम करने की मशीन आ चुकी है। लेकिन व्यक्ति सोच नहीं पा रहा है, यह न सोचने के

फलस्वरूप कत्लखाने का पूरा का पूरा छठा अंश प्रत्येक प्राणी को लग रहा है। नागरिक वही होता है, जो देश की रक्षा का, देश के प्रति अपने कर्त्तव्यों का ध्यान रखता है। देश का नागरिक होकर हिंसा का बहिष्कार नहीं करता, उस हिंसा के विरोध में आंदोलन नहीं करता है, तो वह उस कत्लखाने में करने वाले पशुओं के 10 प्रतिशत मरने का, हत्या का पाप प्रत्येक प्राणी को लगता है क्योंकि तुम्हारे पास क्षमता है, शक्ति है तुम यदि ताकत लगाओ तो देश से कत्लखानों को समाप्त भी कर सकते हो। यदि तुम कत्लखानों को बंद करने का पुरुषार्थ करते हो और यदि कत्लखाना बंद होने में सफलता नहीं भी मिले, फिर भी तुम्हें पाप नहीं लगेगा। और यदि पुरुषार्थ नहीं करते हो तो यह सोच कर कि हमारे अकेले से कुछ भी नहीं हो सकता। अरे प्रत्येक कार्य प्रारम्भ में अकेले से ही शुरू होता है। धीरे-धीरे वह नदी की धार पतली सी निकलती है और वह समुद्र में जा करके मिल जाती है। वह समुद्र कहलाने लगती है। उसी प्रकार एक व्यक्ति से प्रारम्भ होकर, आगे-आगे जाता हुआ पूर्ण रूप से कत्लखाने को बंद करवा सकता है। हमारा पुरुषार्थ, हमारी भावना होना चाहिए।

एक बार एक इंग्लैण्ड के बादशाह का प्रश्न उठा कि भारत देश के बादशाह बहुत वर्षों तक क्यों जीते हैं और इंग्लैण्ड के बादशाह इतनी जल्दी क्यों मर जाते हैं? भारत के 100 साल, 1000 साल 10000 साल जीते हैं क्यों ? वो बादशाह कहता है हमारे पास इसका उत्तर नहीं है, तुम भारत में जाकर बादशाह से इस प्रश्न का उत्तर लेकर आओ और वह 500 सैनिकों, भेंटों को भारत में भेज देता है। वो सैनिक भारत आकर बादशाह के पास जाते हैं। सलामी देकर के प्रश्न पूछते हैं, हमारे बादशाह ने पूछा है कि भारत का बादशाह इतने अधिक वर्ष तक क्यों जीते हैं ? भारत के बादशाह ने कहा अभी आप आराम कीजिए हमारा आतिथ्य स्वीकार कीजिए, भोजन करने के बाद वो 2-3 दिन विश्राम करते हैं और आकर फिर बादशाह से पूछते हैं, बादशाह कहता है, अभी तो तुम्हें आये 2-3 दिन ही हुए हैं, कम से कम 8-15 दिन तो रुको हमारे यहाँ। आप कब आते हैं? पहली बार तो आये हो और इतनी जल्दी जाने के लिए कहते हो यहाँ रुकिए और कोई आवश्यकता हो तो बताइए आपकी हर आवश्यकता की पूर्ति की जायेगी। वो पुनः 8-15 दिन के बाद

बादशाह के पास वापस पहुँचते हैं। बादशाह से फिर प्रश्न का उत्तर पूछते हैं। जिस बिल्डिंग में तुम रहते हो। उसके सामने एक बरगद का वृक्ष है, वो जिस दिन जल जायेगा। उसी दिन तुम्हारे प्रश्न का उत्तर मिल जायेगा। वो 500 सैनिक घबड़ा जाते हैं, इतना हरा भरा वृक्ष कैसे जलेगा? ये कभी जलकर राख होगा नहीं, हमारे प्रश्न का उत्तर मिलेगा नहीं। हम अपने देश कभी वापस नहीं जा सकते हैं। अपने बीवी बच्चों से नहीं मिल सकते हैं। उनकी धारणा बनने लगी, वे जब भी वृक्ष को देखते और सोचते ये कब जलेगा भगवान ये कब राख होगा, हमें अपने परिवार वाले कब मिलेंगे, ऐसा वो हर समय ही सोचते रहते।

भारत संन्यासियों का देश है, यहाँ आकर हम भी संन्यासी बन गये, क्या किया जाये। वो 500 सैनिकों की भावना का ऐसा प्रभाव पड़ा कि 6 महीने में वह वटवृक्ष जलकर राख हो गया, वो प्रसन्नता पूर्वक बादशाह के पास जाकर प्रश्न का उत्तर पूछते हैं। बादशाह कहता है बस यही तुम्हारे प्रश्न का उत्तर है। तुम्हारे देश की प्रजा तुम्हारे बादशाह को चाहती नहीं है, हमेशा भावना करती है कि ये हमारा बादशाह कब मरे कब पोस्ट खाली हो? कब दूसरा राजा आए, इसका कारण यह है कि राजा प्रजा की सुख शांति का ध्यान नहीं रखता है। राजा यदि प्रजा का पुत्रवत् पालन करता है तो प्रजा भी राजा को पिता तुल्य समझती है। वह प्रजा अपने राजा को स्थायी बनाना चाहती है। हमारा राजा कभी मरे नहीं, इसके शासन में हम सुख चैन से सोते हैं, खाते हैं। यदि राजा प्रजा का शोषण करता है तो प्रजा भी इंतजार करती है, यह कब मरे, कब राज्य पद से च्युत हो, यदि नहीं होता है तो प्रजा संगठित होकर भी उसे पद से उतार देती है और यदि राजा/बादशाह प्रजा को सुखी रखता है तो प्रजा हमेशा उसी के पक्ष में रहती है।

विदेशों में पाश्चात्य संस्कृति में प्रजा की तरफ कोई ध्यान नहीं रहता है, जबकि भारतीय संस्कृति में राम राज्य है, क्योंकि राम के राज्य में प्रजा का क्या? गाय, भैंस, पशु, पक्षी तक दुखी नहीं थे, सभी जीव सुख की नींद सोते थे, राजा अच्छा था तो प्रजा भी दयालु थी, वह किसी भी प्राणी पर प्रहार नहीं करती थी, एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक की रक्षा होती थी, क्योंकि राम के हृदय में प्राणी मात्र के प्रति करुणा भाव था, वात्सल्य था, इसीलिए तो वह राम राज्य

था। अतः हम उन महान् आत्माओं की जन्म जयंती मनाते हैं, लेकिन जन्म जयंती मनाना तभी सार्थक है, जब हम यह संकल्प करें कि माँस नहीं खायेंगे, शराब नहीं पीयेंगे या ऐसी कोई वस्तु जो खाने-पीने के योग्य नहीं है, उसे नहीं खायेंगे, नहीं पियेंगे, जर्दा, तम्बाकू, बीड़ी पाऊच, गुटखा नहीं खायेंगे, इनसे व्यक्ति का शरीर, धर्म, पैसा सभी नष्ट होता है। ये सभी पदार्थ असमय में मौत के द्वार तक ले जाने वाले हैं। ये सभी माँसाहार होने के साथ धार्मिक दृष्टि से भी हानिकारक हैं। उदाहरण कई बार इन गुटखा पाऊच में छिपकली की पूँछ बगैरह निकल आती हैं, जो व्यक्ति इन चीजों को खाता है, इनको छोड़ने का मन नहीं करता, इनको खाकर प्रसन्न रहता है, मतलब उसे अपने शरीर से प्रेम नहीं है। खाने वाला अपना धन एवं जीवन दोनों बर्बाद करता है, जिनकी शादी नहीं हुई है, मैं उनसे कहती हूँ कि या तो वह गुटखा खाना छोड़ दें, या शादी करने का त्याग कर दें, क्योंकि जो गुटखादि खाता है, वह जवानी में ही मर जायेगा और एक लड़की की जिंदगी बर्बाद हो जायेगी। गुटखा खाने वालों का कभी बुढ़ापा नहीं आता है, जो बुढ़ापा पसंद नहीं करता है, वह ज्यादा से ज्यादा गुटखा खाना शुरू कर दे। अपनी वर्तमान जिंदगी के साथ भविष्य भी बर्बाद हो जायेगा। नरक निगोद में चले जाओगे, नरक में जिन दुःखों को भोगोगे, उनका वर्णन करोड़ों जिह्वाओं से भी नहीं किया जा सकता है। आज कृष्ण की जन्माष्टमी मनाने के साथ हम संकल्प करें कि हर वर्ष जन्म जयंती मनाते-मनाते एक-एक बुरी आदत भी छोड़ते जायें अर्थात् एक जयंती एक बुरी आदत, दूसरी जयंती पर दूसरी बुरी आदत, ऐसा करते करते एक जयंती ऐसी आयेगी जब हमारे अंदर एक भी बुरी आदत नहीं रहेगी। हमारा जीवन भी भगवान की तरह आदर्श बनता चला जायेगा और उन्नति की तरफ बढ़ता हुआ उज्ज्वल भविष्य का निर्माण होगा।

मुनि निंदा का फल

एक सेठजी की तीन बहुएँ थीं। सेठानी और तीनों बहुएँ कार्यक्रम में जा रही थीं। उन सबकी धर्म के प्रति श्रद्धा थी। लेकिन फ्री समय में जब भोग सम्बन्धी कार्य नहीं रहे, तब ये अनंतानुबंधी लोभ है कि ये धर्म कार्य को छोड़कर भोगों में रत रहना अर्थात् पहले घर का काम करना। पापड़, बड़ी बनाना और धर्म चर्चा या विधान पूजन आदि तो बाद में भी हो जायेंगे। उन्होंने रास्ते में जाते-जाते सुना कि मुनिराज आ रहे हैं। दो बहुओं और सेठानी का नजदीक का रिश्ता था, इसीलिए वहाँ जाना जरुरी लग रहा था, लेकिन छोटी बहू का कोई रिश्ता नहीं था, अतः सेठानी ने उससे कहा कि तुम घर वापस चली जाओ और जाकर मुनिमहाराज के आहार करवा दो। जैसे ही सास ने कहा कि तुम घर वापस जाओ तो उसका मन क्रोध से भर गया और संकोच में ऊपर से तो कुछ नहीं कहा लेकिन मन ही मन कहने लगी कि सब तो कार्यक्रम का मजा लेंगे, वहाँ गीत गायेंगे, पीयेंगे, मौज उड़ायेंगे और मुझे छोड़ दिया, इस नंगे की सेवा करने, इस प्रकार कहती और सोचती है कि इस नंगे को भी अभी ही आना था और कोई गाँव नहीं मिला अर्थात् मन ही मन में मुनि की निंदा कर रही थी, कोस रही थी उनको तिरष्कार की दृष्टि से देख रही थी, देख क्या रही थी, तिरष्कार कर रही थी। आप लोग भी ऐसा करते होंगे, नहीं ऐसा नहीं करते लेकिन इतना तो कर ही लेते हैं कि किसी की गलत चर्या या/ शिथिल चर्या देखकर या कुछ कमी हो तो उसकी निंदा कर देते हैं, उसे दो-चार बातें भी सुना देते होंगे। और कहाँ कि मुनि की निंदा करते हो तो कहते हैं कि हम तो बता रहे हैं, सुना रहे हैं, निंदा नहीं कर रहे हैं। अरे यह निंदा ही तो है। कभी भी किसी की गलती देखकर उसे रोकना नहीं कहना नहीं वरन् यह सोचना कि हम मुनि/ आर्यिका बनेंगे तो कभी ऐसा नहीं करेंगे। दूसरों को सुनाने से क्या, कह भी दिया तो क्या? वह उसे सुधार लेगा, नहीं जब तुम उनसे कुछ नहीं कह पाये तो क्या? और फिर उसे सुनाने से क्या लाभ ? उनका कुछ सुधरे, नहीं सुधरे बल्कि

निंदा करने का पाप तो दोनों ने अर्जन कर लिया। वह छोटी बहू गुस्से में आकर रसोई तैयार करती है। मुनिराज आहार पर निकले संयोग से उसके यहाँ विधि मिल गयी, पड़गाहन हो गया, उसने गुस्से में कड़वी तुम्बी का आहार बनाया था उसे ही मुनि को आहार में दे दिया। प्रथम ग्रास में ही महाराज को समझ में आ गयी कि यह कड़वी है इसको खाने से निश्चित रूप से जीवित नहीं बच पायेंगे (हालांकि अंतराय कर सकते थे, लेकिन उत्कृष्ट साधक अपवाद मार्ग को ग्रहण नहीं करते) अर्थात् उपसर्ग समझ कर आहार कर लिया और वसतिका में आकर सल्लेखना ले ली। सल्लेखना दो प्रकार की होती है। एक अविचार, दूसरी मरण के अंत में विचार पूर्वक मौत का स्वागत करना।

आहार के बाद कुछ ही समय बाद मुनि की अचानक सल्लेखना का समाचार पूरे नगर में फैल गया और श्रावकों को सुनकर रोष उत्पन्न हुआ कि ऐसा क्या हो गया? कैसे हो गया? आज आहार किसके यहाँ हुआ? ऐसा कैसा आहार दे दिया? आदि-आदि बहुत सारी बातें होने लगी, तभी ज्ञात हुआ कि आज तो उस सेठ के यहाँ आहार हुआ और उसकी छोटी बहू ने आहार में कड़वी तुम्बी का आहार दे दिया है। यह सुनकर सभी पंचों को समाज के सभी व्यक्तियों को दुःख हुआ, सभी की आँखों से आँसू की धारा निकल पड़ी कि इस बहू के कारण आज पूरे गाँव को मुनि हत्या का कलंक लगा है। इसको तो मुनि हत्या की सजा मिलनी चाहिए। समाज के भी कुछ नियम होते हैं। कुछ व्यवस्थायें होती हैं। इस बहू ने कुछ भी नहीं सोचा यदि इसको सजा नहीं देंगे तो आगे और भी घरों में लोग अपने भोगों की पुष्टि के लिए ऐसा करेंगे/ करने लगेंगे तो पंचों ने मिलकर उस बहू का काला मुँह करवा कर गाँव से बाहर निकाल दिया। इधर सेठानी को भी जब ज्ञात हुआ, उसने सुना कि हमारे घर में हमारी बहू के द्वारा ऐसा निंदनीय कार्य कर दिया गया है। बहू ने कितना घिनौना कार्य मुनि हत्या की है। कितना बड़ा पाप है। यह पाप जब हमारे घर में हो गया है, उस घर में कैसे रहे हम? यह पाप कैसे धुलेगा? इसको धोने का प्रयास करना चाहिए। अतः दोनों बहूओं और सेठानी ने प्रायश्चित स्वरूप मुनि के पास आकर आर्यिका दीक्षा धारण करने का निश्चय कर लिया। बाद में जब

तीनों बेटे घर पहुँच रहे थे तो उन्हें रास्ते में ही यह समाचार मिल जाता है कि हमारे घर में इतना बड़ा पाप हो गया है अर्थात् धर्मात्मा, धर्म का नाश हो गया है। यह हम कैसे सहन कर सकते हैं? अब कहाँ जाये कैसे अपना मुँह दिखाये, मर जायें लेकिन मरने से भी पाप नहीं छूटेगा। पाप तो सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति और गुरु के चरणों में पाप की निंदा करके प्रायश्चित लेने पर ही छूटेंगे अर्थात् ये पाप 25 प्रतिशत प्रायश्चित के भाव किया तो कम हो जाता है। 25 प्रतिशत आलोचना करने से 25 प्रतिशत प्रायश्चित मिलने पर 25 प्रतिशत प्रायश्चित पूरा करने पर धुल सकता है। क्षय को प्राप्त हो जाता है। वो भी पाप धोने के लिए जाकर गुरु चरणों में प्रायश्चित लेकर जैनेश्वरी दीक्षा भी धारण कर लेते है और उस बहू को जिसे गाँव से बाहर कर दिया था। उसे तीन दिन बाद ही कुष्ट रोग झरने लगता है। देखो गुरु-निंदा कर फल, वह अपने आप में त्रसित/दुखी हो गयी और उस रोग से परेशान होकर उसने अग्नि में कूदकर प्राण दे दिए। मरकर 5 वें नरक में चली गयी, फिर वहाँ से निकलकर दृष्टि विष सर्प, कूकरी, सुअरिय बनी अर्थात् तिर्यञ्च गति की अनेक खोटी घिनौनी पर्यायों को धारण किया। इस प्रकार अनेक पर्यायों में भीषण-भीषण दुखों को सहन करती हुई, किसी कर्म के योग से चम्पापुर में चाण्डालनी हुई, वहाँ एक दिन भूख से व्याकुल होकर उदुम्बर फल खाने वन गयी, वहाँ वन में समाधिगुप्ति मुनि विराजमान थे उन्होंने उसे भव्य जानकर धर्म का स्वरूप बताया पंच नमस्कार मंत्र को धारण करवाया। मधु, माँस, मद्य का त्याग करवाया। उसने भी सरल परिणामों से मुनिराज की बात सुनी और उदुम्बर फलों का तथा अभक्ष्य का त्याग करके प्रसन्न हो गयी और उसी समय उसकी मृत्यु हो गयी और धर्म के प्रभाव से मरकर धनाढ्य सेठ सुबन्धु के यहाँ दुर्गन्धा नाम की पुत्री हुई। जिसके शरीर से बहुत दुर्गंध आती थी। जिसे कोई भी यहाँ तक कि उसकी माँ भी सहन नहीं कर पाती थी, जब वह युवावस्था को प्राप्त हुई, तब वह वासना से भी ग्रसित हो गयी, वह चाहती कि उसकी शादी हो, लेकिन दुर्गंध के कारण उसके पास कोई आना नहीं चाहता था। उसके पिता ने उसी नगर के एक गरीब व्यक्ति से बात की तुम्हारे दो लड़के हैं। उनमें से बड़े लड़के

से मेरी लड़की का विवाह कर दो तो मैं तुम्हें बहुत सारा धन भी दूँगा तो वह लोभ में आकर तैयार हो गया, धन सब कुछ करवा देता है। लेकिन जब लड़के ने सुना तो वह घर छोड़कर भाग गया और धर्म सुनकर समझकर मुनि बन गया। फिर सेठ ने जैसे-तैसे दूसरे लड़के से उसकी शादी कर दी लेकिन वह पहले ही दिन दुर्गंध से धबराकर भाग गया तो सेठ ने उसे वापस घर बुला लिया एवं वह अलग मकान में दुखी होती हुई रहने लगी। एक दिन तीन आर्यिकाओं को अपने पिता के घर में आहार के लिए आयी देखकर वह सोचती है कि ये वृद्ध हैं और आर्यिका बन गई तो कोई बात नहीं लेकिन ये दो जवान सुंदर आर्यिकाएँ क्यों बन गई हैं? इन्होंने आर्यिका दीक्षा क्यों ले ली, ये कितनी सुंदर हैं। बिल्कुल राजकुमारी सी लग रही हैं, देवांगनाओं जैसी लग रही हैं। तब उसने साहस करके गणिनी आर्यिका से पूछ लिया, कि ये इतनी सुंदर हैं, फिर भी इन्होंने दीक्षा क्यों ले ली। इस उम्र में भी ये भोगों को छोड़कर कैसे आ गई। तब बड़ी आर्यिका ने कहा कि ये पूर्व भव में सौधर्म स्वर्ग की देवियाँ थीं तो इन्होंने द्वीप की पूजा कर अपने मन में तप करने की प्रतिज्ञा की और वहाँ से आकर के राजा श्रीषेण एवं श्रीकांता रानी के हरिषेणा और श्रीषेणा नाम की पुत्रियाँ हुई एवं स्वयंवर में संपूर्ण राजाओं को देखकर जातिस्मरण हो गया और पूर्व भव की प्रतिज्ञा याद कर दोनों ने सभी भोगों को छोड़कर जिनदीक्षा धारण कर ली। दोनों का वैराग्य सुनकर दुर्गंधा को भी वैराग्य आ गया कि इन्हें तो सब चाहते थे फिर भी ये सबको छोड़कर दीक्षा लेने आ गयी और मुझे देखो जिसे कोई चाहता नहीं है फिर भी शादी करना चाहती थी और शादी की भी तो भी दुखी हूँ। वह भी आर्यिकाश्री के सामने अपने दीक्षा लेने के भाव प्रकट कर देती है। वो आर्यिका श्री तुरंत उसके भावों की सराहना करने लगती हैं और उसे दीक्षा देने के लिए तैयार हो जाती हैं। देखो कितनी निर्विकारता थी, उनके अंदर। यही वास्तविक निर्विचिकत्सा अंग था, जिसके पास गाँव, समाज का तो क्या स्वयं उसके माता-पिता भी बैठना पसंद नहीं कर रहे थे, उसको भी दीक्षा देकर जीवन भर के लिए अपने पास रखने को तैयार हो गयी, जिसे माँ-बाप ने घर से अलग कर दिया था, उसे भी आर्यिका श्री ने इतनी सरलता से अपने पास

रख लिया। यही है करुणा, वात्सल्यता एवं इन्द्रिय विषयों के त्याग की महत्ता। वह भी दीक्षा लेकर अपनी बड़ी आर्यिका श्री के अनुसार निर्दोष आगमानुसार मूलगुणों का पालन करती और विशेष-विशेष तप भी करने लगी, अपने पूर्वकृत पापों की भी निंदा करती/प्रायश्चित करती। सबके साथ सामूहिक आवश्यक क्रियायें करती। एक दिन वह सामायिक कर रही थी, उस समय एक वेश्या के पीछे पाँच जार पुरुष जा रहे थे, उसको देख कर वैसा ही सुंदर शरीर मुझे मिले, ऐसा निदान कर लिया। भाव आ गये कि वेश्या के पीछे पाँच-पाँच एक साथ भाग रहे थे, सभी उसे चाह रहे हैं। मैं कैसी हूँ, मुझे एक भी नहीं चाहता है। ऐसा भाव आते ही तुरंत उसे याद आ गया कि यह गलत है मैं तो आर्यिका हूँ, यह सब तो विषय भोग हैं, मुझे छोड़ना है वह अपनी निंदा करने लगी। मैंने आर्यिका बनकर भी ऐसे भाव कर लिए। वह अपनी गणिनी आर्यिका श्री के पास जाकर बालकवत् निश्चल भाव से पूरी बात बता देती है, वो भी उसे प्रायश्चित देती है। वह प्रायश्चित पूरा करती है और अंत में समाधिमरण कर 16 वें स्वर्ग में देवी हुई। अपने भावों की निंदा/प्रायश्चित करने के बाद भी वह वहाँ से आकर द्रौपदी बनी और पंचभर्तारी और सती दोनों के नाम से लोक में प्रसिद्ध हुई। यह उसे मन के भावों का फल मिला। वो दोनों बहुएँ व सेठानी वह तीनों बेटे भी कालान्तर में समाधिमरण को प्राप्त कर स्वर्ग में गए। वहाँ से आकर के सेठानी कुन्ती बनी, तीनों बेटे भीम, अर्जुन, युधिष्ठिर बने। दोनों बहुएँ नकुल-सहदेव बने। जब द्रौपदी का स्वयंवर रचा गया, तब माला अर्जुन के गले में ही डाली थी, लेकिन पूर्वकृत कर्म के उदय से हवा आँधी ऐसी चली कि माला टूटकर उसके फूल पाँचों पाण्डवों की गोदी में पहुँच गए और वह पंचभर्तारी कही गयी अर्थात् द्रौपदी के पाँच पति का लांछन लगा। मुनि की निंदा करने से द्रौपदी अनेकानेक पर्यायों में भीषण दुःखों को सहन किया। हमें भी इस दुष्कृत्य से अर्थात् मुनि निंदा से बचना चाहिए/कभी नहीं करना चाहिए।

चिलाती पुत्र

एक राजा वन में क्रीड़ा करने जा रहा था। जाते-जाते वह रास्ता भटक गया, जिस प्रकार संसारी प्राणी सही मार्ग पर चलते-चलते भटक जाता है। सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के बाद भी अर्द्ध-पुद्गल परावर्तन काल तक भी संसार में भटक सकता है। वह राजा भी सही मार्ग पर था, लेकिन मन की चंचलता होने से भटकन हो गयी, मन एकाग्र रहता है तो रास्ता भी सही-सही दिखता है। मन कहीं चला गया तो रास्ता भी कहीं चला जाता है। रास्ता दिखते हुए भी नहीं दिखने जैसा हो जाता है। यहाँ बैठे-बैठे सुन रहे हैं, बैठे हुए यहाँ दिखते हैं, लेकिन मन दुकान पर, घर पर या अन्य कहीं स्थान पर भी हो सकता है और यहाँ पर भी हो सकता है। मन चंचल है तो सुनते हुए भी सुनाई नहीं देगा। ऐसे ही विद्यार्थी के जीवन में एकाग्रता का अभाव है तो पासिंग मार्कस भी मुश्किल हो जाता है। यदि कक्षा में एक बार भी एकाग्रता से पढ़ता है तो कभी भी फैल नहीं होता है और वह राजा भी भटक कर ऐसे बीहड़/भयानक जंगल में पहुँच जाता है, जहाँ कोई मनुष्य नहीं पहुँच पाता था और ऐसे ही जंगल में एक गड्ढे में घोड़ा गिरा देता है। तब ख्याल आता है कि जीव गड्ढे में अनादिकाल से पड़ा हुआ है और राग-द्वेष के साथ उठने का प्रयास करता है। इसीलिए आज तक उठ नहीं पाया है। शरीर से इतना प्रेम है कि आधी रात को भी कुछ हो जाए तो डॉक्टर, अस्पताल या अन्य सभी प्रकार के उपाय करना प्रारम्भ कर देता है। आचार्य कहते हैं कि ''शरीर तीन कारणों से सूखता है, बीमारी से, टेंशन से, तपस्या से।'' दो कारण से तो संसार में भ्रमण ही होता है, लेकिन तपस्या से लोक पूज्य बन जाता है। राजा सोच-विचार करके गड्ढे से बाहर निकलने लगता है। उसके पूरे शरीर पर घाव बन गए थे, पूरा छिल गया था, लेकिन व्यक्ति के सामने जब कोई नहीं होता है तो वह तकलीफ सहन कर लेता है, लेकिन जैसे ही कोई दिखता है तो तकलीफ सहन नहीं हो पाती है, हिल ही नहीं पाता है। उठ बैठ ही नहीं पाता है। निकलकर

रास्ता खोजता है और रास्ता मिलते ही एक झोपड़ी दिखती है, झोपड़ी में पहुँच जाता है और भील अपनी झोपड़ी में राजा को देखते ही आश्चर्यचकित हो जाता है। ऐसे जंगल में इस हालात में राजा कैसे? वह तत्काल ही अपनी खाट बिछाता है बैठने के लिए और पानी लाने के लिए अपनी बेटी को आवाज लगाता है। उसकी बेटी पानी लेकर आती है और राजा उसको देखकर अपनी सारी वेदना भूल जाता है, पानी पीना भी भूल जाता है, बिना आभरणों, शृंगार के भी इतनी सुंदर देखते ही राजा मोहित हो जाता है। यह तो मुझे मिलना चाहिए, राजमहल में रानियाँ होते हुए भी, पानी पीये बिना भी यह मुझे दे दो मेरी रानी बना दो। भील मनाकर देता है नहीं, राजा कहता है क्यों, हमारे राजमहल में सुख से रहेगी। और भविष्य में इसकी संतान होगी तो उसका भी भविष्य सही नहीं बनेगा, उसको राज्य नहीं मिलेगा। मैं ऐसे में अपनी लड़की कैसे दे दूँ। आज की बात अलग है। करोड़पति ने लड़की मांगी तो मात्र धन एवं भोग सामग्री को देखकर ही देने को तैयार हो जाते हैं। उसके भविष्य की नहीं सोचते है, लड़का कैसा है, व्यसनी तो नहीं है, सदाचारी है या नहीं, कमाता है या नहीं कुछ भी नहीं देखते हैं। जबकि धन मात्र से सुख नहीं, गरीब की लड़की यदि धनवान के यहाँ गई तो वह घर में कंजूसी बर्तेगी या फिजूलखर्ची करना शुरू कर देगी। और यदि धनवान की लड़की गरीब के यहाँ तो मन में हमेशा कुण्ठित होती रहेगी और पीहर की तरफ ही झुकी रहेगी उसका मन ससुराल को अपना घर स्वीकार नहीं कर पायेगी। आपस में प्रेम वात्सल्य का भाव नहीं होगा। इसीलिए समान दृष्टि वाले से सम्बन्ध हो तो प्रेम भी बना रहता है। भील समझता था कि लड़की देनी पड़ेगी क्योंकि राजा है, राजा से विरोध करना मतलब जीवन पतित करना है। और उसने विचार करके राजा के सामने शर्त रखी कि इसकी होने वाली संतान को राज्य का उत्तराधिकारी बनाओ, तो लड़की दूँगा। वासना ऐसी ही होती है कि राजा सब कुछ भूलकर अपने पान का वीड़ा निकालकर लड़की के हाथ में रखकर वचन दे देता है कि इसकी संतान ही उत्तराधिकारी बनेगी और भील ने राजा के साथ लड़की का विवाह कर दिया। समय निकलता गया, कालान्तर में उसके एक पुत्र हुआ और पुत्र

पूरा का पूरा ननिहाल पक्ष में चला गया। देखा जाता है कि संतान कभी-कभी माता-पिता के तो कभी दादा-दादी या नाना-नानी के ऊपर चली जाती है। और उसका रूप, रंग भी गुण एवं क्रियाओं से भी माता की तरफ था, नाना के गुण थे। राजकुमार होकर भी उदण्डी था, उदार दिल वाला नहीं था। उसको देखकर राजा को चिंता लगती कि यह कैसे राज्य चलायेगा। लेकिन क्या करें, राजा हूँ बोलकर बदलता नहीं, बनिया की जबान भी पत्थर की लकीर होती है। माल गोदाम तक आये न आये लेकिन सौदा तो किया है, उसको ही पूरा देता है, भले ही भाव घट जायें या बढ़ जायें। जो बोलकर बदलता नहीं उसके वचन की सिद्धि हो जाती है। अर्थात् फिर वह तो कहेगा वो होकर रहेगा। क्योंकि वो निश्छलता से बोलता है जहाँ स्वार्थ आ जाता है, वहाँ झूठ आ ही जाता है। समय पाकर राजा ने दीक्षा लेने का विचार किया तो राज्य का उत्तराधिकारी किसे बनाएँ, मंत्रियों से सलाह लेता है, मंत्री सर्वश्रेष्ठ पुत्र की सलाह देते हैं, लेकिन राजा कहता है, मैं जन्म के पहले ही उसे राजा घोषित कर चुका हूँ, इससे समाज में, प्रजा में प्रतिक्रिया होगी। राज्य में कुछ भी घटित हो सकता है। तब मंत्रियों से कहता है उपाय सोचो और मंत्री जाकर उस श्रेष्ठ राजकुमार से कह देते हैं कि तुम राज्य से बाहर चले जाओ, राजा तुम्हारे ऊपर कुपित हैं, तब उस श्रेष्ठ राजकुमार ने सोचा बिना कारण राजा क्रोधित हैं, मतलब कुछ भी अनिष्ट हो सकता है और राज्य एवं राज्यलक्ष्मी सभी को क्षणभंगुर सोचता हुआ चला जाता है। पुण्य का उदय होगा तो मिलेगी। पुण्य नहीं तो हाथ में आकर भी चला जायेगा। भाग्य जैसा होगा वैसा मिलेगा। धर्म को साठा में लेकर चला जा रहा है। नश्वर राज्य के लिए लड़ाई नहीं करूँगा। और इधर राजा उस भीलिनि रानी के पुत्र को राजा बना देता है, राजा बनते ही प्रजा को पीड़ित करने लगता है। जब राजा ही तौलकर देने लगा, तो प्रजा कभी सुखी नहीं रह सकती। राजा यदि नाप कर, माप कर देता है तो कोष खाली हो जाता है। और यदि राजा हाथ से, दिल से देता है तो देते-देते भी खजाना कभी खाली नहीं होता है। राजा प्रजा के पक्ष में तो प्रजा राजा को चाहती है। जब राजा प्रजा पर अत्याचार करने लगता है तो प्रजा मिलकर राजा को पद से उतार देती है।

इधर प्रजा भी उसे उतारने की सोच रही है। लेकिन पहले दूसरा राजा खोज ले और प्रजा जन उस श्रेष्ठ राजकुमार को खोजते हैं। श्रेष्ठ राजकुमार को पाकर उसे राजा बना देते हैं और पुराने राजा को नगर के बाहर कोठी बनाकर दे देते हैं। अब प्रजा अपने नए राजा की क्रियाओं से सुखी थी। नगर में शांति हो गई है, नया राजा प्रजा का पूरा ध्यान रखता था, रात को भी नगर में भ्रमण करके प्रजा के सुख-दुःख जानने का प्रयास करता था, समय-समय पर खजाना खोलकर प्रजा को इच्छानुसार दान भी देता था, समय-समय पर धार्मिक उत्सव भी करता था। प्रजा हर प्रकार से सुखी थी। तभी प्रजा ने मिलकर एक योजना बनाई कि हमारा राजा अकेला अच्छा नहीं लगता, अब इनका विवाह करवाना चाहिए ताकि राजमहल में रानी जी आयेगी और राजमहल के साथ-साथ नगर में रौनक आ जायेगी। यह बात पुरुष वर्ग जानता है कि घर में गृहिणी के रहने से कितनी चहल-पहल रहती है। कभी डांट भी देते हैं तो भी घर में उदासी छा जाती है, फिर आभूषण या अन्य कोई वस्तु लाकर प्रसन्न करते हैं। और वह प्रसन्न भी हो जाती है, फिर घर में रौनकता आ जाती है। प्रजा ने भी राजा की शादी एक सेठ की लड़की से शुभ तिथि/मुहूर्त में निश्चित कर देते हैं। और सभी मित्रमंडल मिलकर शादी की तैयारियाँ करते हैं। बारात में सभी जाने लगते हैं कि तभी उस पुराने राजा को मालूम चलता है तो वो अपने मित्रों से कहता है कि मैं भी तो भूतपूर्व राजा हूँ, मेरी शादी उस लड़की से होना चाहिए। मित्र कहते हैं तुम कहाँ और वो कहाँ वो उसी के योग्य है, तुम्हारे योग्य नहीं है। वो कहता है कि तुम मेरा साथ नहीं देते तो न दो लेकिन मैं बलात् ही सही उससे शादी करूँगा। चोरों के भी मित्र होते हैं, कुछ मित्रों ने साथ दिया और योजना बनाई फेरे पड़ते समय ही उठाकर ले आऐंगे और उधर बारात पहुँचती है रस्में अदा होती हैं। इधर सभी लग्न मंडप पर कार्य करते हैं। उधर लड़की अकेली थी, अवसर देखते ही, वह लड़की को उठाकर भाग जाता है। राजा, बराती, सेना, सभी देख रहे हैं। 5 फुट की लड़की दिखती नहीं क्या दिख रही थी छटपटाहट थी पर वो ठहरा भील कुली शक्ति थी, कंधे पर लड़की को लेकर भाग रहा था, पीछे सैनिक भाग रहे थे, भागता जाता पीछे मुड़कर देखता

और फिर भागता तब तक सैनिक और पास आ जाते हैं, सैनिक खाली दौड़ रहे थे, वो भार के साथ भाग रहा था। वो सोचता अब पकड़े जायेंगे, राजा भी आ जायेगा फिर क्या मुझे न मिले कोई बात नहीं लेकिन उसे भी नहीं मिलना चाहिए और वह लड़की को जमीन पर पटककर मार देता है। ईर्ष्या परिणाम से ही तो नरक निगोद की यात्रा हो जाती है। दूसरे का अहित सोचने वाले का कभी हित नहीं हो सकता है। लेकिन मूर्खता से दिन में सैकड़ों बार हम ये सब करते रहते हैं, उसका फल हमें पाप के अलावा कुछ नहीं मिलता है। धर्म क्षेत्र में आकर भी ईर्ष्या परिणाम तो पाप और तीव्र बंध होता है। सामायिक में बैठकर सोचना चाहिए कि दिन भर हमने बिना प्रयोजन का कितना सोचा है, बोला है, किया है, खाया है, पिया है, तब समझ में आये कि हम कितना पाप बाँध लेते हैं। वह लड़की को मारकर भागता है, अब खाली हो गया तो तेज भागने लगा, भागते-भागते मुनिराज के पास चला जाता है, क्योंकि यहाँ तो निश्चित प्राण बच जायेंगे। मुनिराज आप ही शरण भूत हैं। 'अन्यथा शरणं नास्ति' महाराज से दीक्षा की प्रार्थना करता है अपना किया कृत्य बताता है और कहता है मरना तो है ही तो दीक्षा लेकर ही मरूँ। तब मुनिराज दीक्षा दे देते हैं और कहते हैं, अब मौन रहना, वो कुछ भी कहे तो भी तुम्हें बोलना नहीं है, देखना भी नहीं। वह भी गुरु आज्ञा समझ कर खड़ा हो जाता है। सैनिक भी पीछा करते वहाँ पहुँच जाते हैं। राजा भी पहुँचता है। अरे यह तो मुनि बन गया। उपसर्ग तो नहीं कर सकते हैं। मन कह रहा था, मार दो तो यही हत्यारा पापी मुनि बन गया तो क्या लेकिन राजा कहता है कि अरे नये मुनिराज हैं, सभी नमस्कार करो धन्य हैं, इन्होंने दिगम्बर भेष धारण कर लिया है। इनकी परम विशुद्धि होगी दीक्षा के समय तो विशुद्धि वो हर समय नहीं रहती है। उस समय को याद रखो तो कल्याण करने में साधना में उन्नति होती है। पति-पत्नी का प्रेम भी पहले दिन का जो होता है वो बाद में नहीं होता है। दीक्षा को याद करके सल्लेखना करते हैं। उपसर्गादि जीतते हैं। पति-पत्नी भी पहले दिन को याद करके पूरा जीवन सुखी बनाते हैं। राजा स्तुति करता है, अष्ट द्रव्य से पूजन करता है, अभी आहार तक नहीं किए हैं और ध्यान में निश्छल खड़े हैं। सभी

सोचते हैं, नमस्कार करेंगे, हमारा सम्यग्दर्शन तो समाप्त नहीं हो जायेगा, दोष तो नहीं लगेगा। राजा के डर से करेंगे तो मिथ्यादृष्टि बन जायेंगे, नहीं करेंगे तो राजा का डर कहीं कुछ कर देगा तो क्योंकि जीवन में सुखी रहना है तो राजा के, गुरु के आगे नहीं चलना चाहिए। सम्यग्दृष्टि स्वयं का ही देखता है, दूसरे का नहीं। परिणाम इतने चंचल कि कब, किसके, कैसे बन जायें, यह द्रव्यलिंगी ही हो पर भावलिंगी हो जरुरी नहीं, भाव आए तो करोड़पति, भाव गिरे तो रोड़पति। एक क्षण में ध्यान करके केवली भी बन सकते हैं। एक बिगड़ा लड़का मुनि बन गया तो 10 साल बाद भी उसी चिह्न से याद करते हैं। अंजन चोर भगवानबन गया फिर भी प्रसिद्धि चोर से है। संसार की दृष्टि दोषों पर अधिक गुणों पर नहीं आती है। गुणों पर दृष्टि चली जाये तो धर्मात्मा बन जाए। वो भी मुनि बन गया था, लेकिन सभी को हत्यारा दिख रहा था। सभी राजा के साथ पूजन अर्चना करके चले गए। तब नये मुनिराज ध्यान पूरा करके गुरु से जंगल में जाने की आज्ञा माँगते हैं। मुझे अब आहार नहीं करना है, बोलना भी नहीं है पञ्चेन्द्रिय के विषयों की तरफ नहीं जाना है। गुरु भी अवधिज्ञान से जानकर कि इसकी आयु तीन/सात दिन की है, उसे आज्ञा दे देते हैं। गुरु का आशीष लेकर भयानक जंगल में जहाँ साँप, शेर, हाथियों के झुण्ड थे। साक्षात् साँपों के बीच में शेर के सामने जाकर खड़े हो गये, डर नहीं रहा। आत्मा की तरफ ध्यान तो बाहर की तरफ ध्यान नहीं जाता है। हम तो सुनकर भी डर/सिहर जाते हैं। अरे नकली देखकर भी सामायिक छोड़ देते हैं। जिसको शरीर से ममत्व नहीं, उसे संसार से भय नहीं, संकल्प लेकर खड़े हो, जीवन पर्यन्त न बोलूँगा, न देखूँगा, न खाऊँगा। चारों प्रकार के आहार का त्याग, पञ्चेन्द्रिय के विषयों का त्याग और आत्मा ध्यान में, भेद विज्ञान के माध्यम से लीन होते हैं। उधर वो लड़की मरकर व्यंतरणी बन जाती है। अवधि लगाती है, कैसे आयी, कौन वो मुनि बन गया। पहले मैं शक्तिहीन थी, अब शक्तिशाली हूँ। लेकिन मुनि पर उपसर्ग कैसे करूँ ? मुनि पर उपसर्ग करना, निंदा करना सबसे बड़ा पाप है। कषायी को भी उतना पाप नहीं जितना मुनि निंदा का। प्रशंसा नहीं कर पाओ तो नहीं करना लेकिन निंदा कभी नहीं करना। गुरु का

तिरस्कार अरे वो भी तो छद्मस्थ हैं, गलती हो जाती है। लेकिन हम उस गलती को सबसे कहकर और बड़ी गलती कर रहे हैं, कभी मजबूरी से, कभी प्रसन्नता के साथ भी, कभी जानकर भी दिखाने के लिए भी हो जाती है। दो में तुलना करोगे तो एक अच्छा एक बुरा दिखेगा। साधक अपने हिसाब से साधना करता है लेकिन साधना में साधक न बनकर निंदा करके पाप का अर्जन कर लेते हैं। सफेद दाग की बीमारी मुनि निंदा से ही होती है, पूर्व भव में गुरु का तिरस्कार किया होगा, निंदा की होगी। निंदा तो कुत्तों की भी नहीं करना चाहिए निंदा से नीच गोत्र का बंध होता है। कषायों का जोर रहता है तो नहीं चाहते हुए भी काम कर लेता है। आत्मा कहती है, नहीं उपसर्ग नहीं करना है लेकिन कषायें कहती करो, उपसर्ग करो, तभी मन प्रसन्न होगा, लड़ाई में आँख से आँख नहीं मिले तो बैर/ लड़ाई बढ़ती है। आँख मिलते ही बैर/द्वेष/लड़ाई समाप्त हो जाती है। बार-बार उसकी आत्मा प्रेरित करती है कि उपसर्ग नहीं करो। भवभ्रमण बढ़ेगा लेकिन मन कहता है नहीं, इसी ने मुझे रानी नहीं बनने दिया और मन कषायें आत्मा पर हावी हो जाता है। तो वह गिद्ध पक्षी का रूप बनाकर लोहे की चोंच बनाकर, महाराज को ललकार कर कहती है, पहले तुम शक्तिशाली थे, अब मेरे पास शक्ति है। मुनि हो मेरा कुछ नहीं कर पाओगे और वह सैकड़ों जगह से माँस निकाल-निकाल कर नोंचना शुरू कर देती है। तब भी महाराज ज्यों के त्यों खड़े हैं, हिले भी नहीं, वेदना को सहन करते हैं, शांति से चलायमान नहीं होते हैं। भेदविज्ञान से शरीर आत्मा अलग-अलग है। आत्मा में घाव हो ही नहीं सकते है। शरीर मैं नहीं हो सकता, आत्मा अलग शरीर अलग है। मुनि को स्थिर प्रशांत मुद्रा में देखकर सोचती है कि इनको कुछ हो ही नहीं रहा है तो वह उन घावों में सैकड़ों-सैकड़ों कीड़े पटकती है। हमारे बिना घाव के भी मक्खी, मच्छर काटते हैं या बैठ जाते हैं तो कैसा लगता है और फिर उनके तो घाव में कीड़े कितनी वेदना हो रही होगी लेकिन फिर भी मुनिराज 'रम्मे शूरा सो धम्मे शूरा' वाली सूक्ति चरितार्थ करते हुए। आत्मा में लीन रहे और वह तीन/सात दिन तक उपसर्ग करती रही। शरीर से ममत्व नहीं है तो बाहर कुछ भी नहीं है। और उपसर्ग सहन करके सर्वार्थसिद्धि में चले

गए। एक भवावतारी 33 सागर तक मात्र धर्म चर्चा करेंगे वहाँ से आकर मोक्ष जायेंगे। टिकिट मिल गया रिजर्वेशन हो गया। हम यहाँ यह सोचते रहे कि द्रव्यलिंगी होंगे, लेकिन उन्होंने भाव संभालकर संसार समाप्त करने का पुरुषार्थ कर लिया। कुछ क्षण पहले पञ्चेन्द्रिय के विषय भोग के लिए हिंसा जैसा पाप और कुछ समय बाद पूर्ण हिंसा के त्यागी बन गये, भाव परिवर्तनशील हैं। कब, किसके, कैसे, क्या भाव हो जायें, कोई कह नहीं सकते हैं। समाधिमरण में नाम सुनाते हैं।

पुत्र चिलाती नामा मुनि को वैशी ने तन धाता।
मोटे-मोटे कीट पड़े तन ता पर निज गुण राता ॥

इन मुनिराजों की कथा सुनने से, चिंतन करने से, अपने में भी बल, वीर्य की वृद्धि आती है, उपसर्ग परिषह सहने की समता आती है। रोगादि की वेदना सहन करने की शक्ति आती है। जब भाव में कुछ हो तो भाव संभालना चाहिए कि एक हत्यारा भी मुनि बनकर उपसर्ग सहकर सर्वार्थसिद्धि चला गया।

रक्षाबंधन पर्व

आज रक्षाबंधन का दिन है, यह त्यौहार सभी जातियों में मनाया जाता है। सभी के अपने-अपने अलग-अलग उद्देश्य हैं। अपने-अपने उद्देश्यों से रक्षाबंधन मनाने की परम्परा है। जैनों में रक्षाबंधन मनाने का मूल कारण है कि - आज के दिन एक ऐसी घटना घटी, जिसके माध्यम से हजारों वर्षों के बाद भी उसको याद किया जाता है। रक्षाबंधन से सात दिन पहले से 700 मुनिराजों पर जो उपसर्ग हो रहा था वह उपसर्ग दूर हो गया था, एक मुनि महाराज के द्वारा 700 मुनियों का कष्ट दूर किया गया था और कष्ट दूर होते ही सभी श्रावक आनंदित हो गये थे, आनंद से भाव विभोर होकर एक-दूसरे के हाथ में रक्षा सूत्र बांधे थे और संकल्प लिया कि तन से, मन से, धन से हम एक-दूसरे के धर्म की रक्षा करेंगे। वो संकल्प तब से आते-आते आज मात्र भाई-बहिन तक सीमित हो गया है। माता-पिता के घर में बेटा-बेटी लेकिन माता-पिता बेटी को दूसरे के घर भेज देते हैं और बेटे को अपने पास रख लेते हैं तब भाई-बहिन आपस में कब मिलें, प्रेम व्यवहार कैसे हो तो कम से कम वर्ष में एक बार इस रक्षाबंधन के निमित्त से बहिन-भाई के घर आ जाती है तो कभी भाई बहिन के घर चला जाता है और आपस में सुख दुःख की बातें कर लेते हैं। प्रेम व्यवहार बना रहता है। लेकिन आज इस पवित्र बंधन को पैसे से जोड़कर विकृत बना दिया है। मूल उद्देश्य धर्म, शील की रक्षा को भुलाकर यह देखते हैं, बहिन ने राखी कैसी बाँधी, मिठाई कैसी लायी है, कपड़ा है या और क्या-क्या है और भाई भी उसी हिसाब से बहिन की विदाई कर देता है। एक दिन राखी बाँध दी तो समझो जीवन भर रक्षा का संकल्प कर लिया है, लेकिन अब तो दूसरे दिन ही लड़ाई हो जाती है। लड़ाई होने पर भी जीवन भर विपत्तियों से रक्षा करना चाहिए। जो आपत्ति में रक्षा नहीं करता है। मात्र स्वार्थ से पैसादि ही लेना चाहता है। उसे कर्त्तव्य हीन कहा जाता है। यथाशक्ति रक्षा करना चाहिए। राखी बंधवाने के पहले ही इतना बिल पावर बना लेना चाहिए कि मैं पूरी व्यवहारिकता निभाऊँगा, धर्म, शील, परिवार पर आपत्ति आयेगी तो रक्षा

करूँगा। आज तो ऐसी लड़ाई भी हो जाती हैं कि भाई-बहिन का मुँह नहीं देखना चाहता तो बहिन भी भाई के यहाँ नहीं जाना चाहती। भाई-बहिन ही क्या, माता-बेटा, भाई-भाई, बहिन-बहिन या अन्य रिश्तों में भी अरे भगवान से भी, मंदिर से भी तीर्थ क्षेत्रों से भी लड़ाई हो जाती है, जैसे मंदिर में या तीर्थ क्षेत्र पर कोई ऐसी घटना हो जाये तो उसके प्रति वितृष्णा भर जाती है, वहाँ जाना ही नहीं चाहता है, आज मुनिराज ने मुनिराजों की रक्षा करके वात्सल्य का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया था। हर वर्ष हम कथा सुनते हैं, कथा तो महापुरुषों की सुनना चाहिए। कथा तो दिन-प्रतिदिन पढ़ना/सुनना चाहिए, क्योंकि उनके जीवन का एक सूत्र भी हमारे जीवन को परिवर्तित कर देता है। पौराणिक कथाओं के पढ़ने से/ सुनने से, पुण्य-पाप, उसका फल समझ में आता है और उससे जीवन विकास की ओर बढ़ता है, आत्म कल्याण में साधक होती है।

उज्जयिनी नगरी में श्री वर्मा नामक दानवीर, शूरवीर, प्रजा प्रिय, धर्मात्मा राजा था। उसके राज्य संचालन में प्रजा आनंद पूर्वक धर्म करते हुए रह रही थी। उन सबके पुण्योदय से उसके बगीचे में 700 मुनियों का आगमन हुआ, पहले महाराज नगर में प्रवेश नहीं करते थे, वरन् जंगल में ही रहते थे क्योंकि संहनन भी उत्तम था और रोज-रोज आहार भी नहीं करते थे, तो उन्हें नगर में आने की आवश्यकता नहीं रहती थी, लेकिन आज कषायों की उग्रता से, संहनन की हीनता से नगरों में ही रहना पड़ता है। तो वे मुनिराज नगर के बाहर ही उद्यान में ठहर गये और उनके प्रभाव से बगीचे के सभी ऋतुओं के फल-फूल फलित हो गये, उसे देखकर माली को आश्चर्य हुआ चतुर्मास में ही आम, जामुन, संतरादि फलों से वृक्ष लद गये तो माली टोकरा भरकर राजा के पास ले गया और निवेदन किया कि राजन् आपके पुण्योदय से बगीचे में मुनिराज आये और उनके आते ही पूरा बगीचा फल-फूल गया। राजा सुनकर प्रसन्न हो गया और वहीं से नमस्कार करके पूरी प्रजा को आदेश दिया कि सभी को मुनिराज के दर्शन करने चलना है और सभी ने अपने-अपने हाथों में अष्ट द्रव्य के थाल, श्रीफल आदि लेकर तैयार हो गये राजा, रानी, मंत्री भी अपने-अपने यथायोग्य रथ, हाथी, घोड़ों पर सवार होकर उत्साह के साथ दर्शन के लिए चल पड़े।

उधर मुनिराज ने निमित्तज्ञान/अवधिज्ञान से जान लिया था कि यहाँ बोलने से कोई घटना घट सकती है और उन्होंने सभी संघ को मौन रहने का आदेश दे दिया, आज्ञाकारी शिष्य थे, किसी ने कोई तर्क नहीं किया। गुरु आज्ञा को शिरोधार्य कर मौन लेकर ध्यान में बैठ गये, नहीं तो कोई तर्क भी कर सकता है कि आप तो इतने ज्ञानी हैं वो क्या करेंगे, क्या आता है उन्हें, कुछ भी तो नहीं जानते हैं वो। इधर राजा मंत्री आपस में चर्चा करते जा रहे थे। राजा मुनिराजों के ध्यान, ज्ञान, तप-त्याग की प्रशंसा कर रहा था, तो वहीं मंत्री उनको ढ़ोगी, पाखण्डी कह रहा था। इनको कुछ नहीं आता है। आपसी विवाद करते-करते वे वहाँ पहुँच गये, राजा को गौरव था, बहुमान था, राजा ने मन-वचन-काय पूर्वक नमस्कार किया। एक-एक कर सभी को नमस्कार किया, लेकिन किसी ने भी आशीर्वाद नहीं दिया, आशीर्वाद नहीं मिले तो मन नहीं लगता है। ऐसा लगता है एक बार तो गुरु/मुनि की दृष्टि हमारे ऊपर पड़ जाये तो हम भी धन्य हो जायें। राजा व प्रजा दोनों ही सोच रहे थे, कि बड़े ध्यानी हैं, ध्यान में इतने लीन हैं कि किसी ने भी आँख उठाकर नहीं देखा, लेकिन मंत्री कह रहा था कि ये ध्यानी नहीं, ये तो ढ़ोंगी हैं, कुछ आता नहीं, इसीलिए कुछ बोले नहीं। मौन लेकर अपनी अज्ञानता पर पर्दा डाल रहे थे और तभी दर्शन करके लौटते समय एक मुनिराज (**श्रुतसागर**) जो आहार करने गये थे, जिन्हें गुरु का आदेश मालूम नहीं था, मिल गये उन्हें देखकर मंत्री बोला देखो ये बैल तोंद भर कर खाके चला आ रहा है, सुनते ही राजा को गुस्सा आ गया। उसने कुछ कहा तो नहीं क्योंकि मंत्री है और मंत्री से एकदम उलझना नहीं चाहिए, राज्य को खतरा हो जायेगा और वह मंत्री मुनि से वाद-विवाद करने लगा, वाद-विवाद करते-करते हार गया और सभी के बीच नीचा देखना पड़ा, अंदर में गर्व था और जब गर्व चूर-चूर होने लगता है तो वह बैर रूप में परिणत हो जाता है। मुँह नीचा करके वह राजभवन में वापस लौट आया, मुनि भी गुरु के पास पहुँचते हैं, पहुँचते ही सारी घटना यथावत् बता दी, लेकिन घटना सुनते ही गुरुजी का चेहरा उदास हो गया। उनके माथे पर चिंता की रेखाएँ स्पष्ट दिख रही थीं। गुरुजी ने कुछ कहा नहीं था, लेकिन शिष्य मुखड़ा देखकर ही समझ गया कि मुझसे गलत हो गया है। मेरे प्रमाद के कारण से धर्म, धर्मात्मा का नाश, धर्म की

अप्रभावना हो जायेगी, आप मुझे प्रायश्चित दे दीजिए, इस आपत्ति से रक्षा का उपाय बता दीजिए। गुरुजी ने कहाँ तुम वहीं उसी स्थान पर जाकर ध्यान में खड़े हो जाओ तो हो सकता है, उपसर्ग टल जाये। गुरु से सफलता का आशीर्वाद लेकर रात्रि योग धारण करने के लिए वहीं पहुँच गए और ध्यानस्थ हो गये। उधर मान कषाय प्रेरित कर रही थी कि बदला लो, बदला नहीं लोगे तो तुम्हारा मंत्री होना न होना बराबर है। क्रोध रूपी अग्नि मान की हवा से भभक रही थी चारों ही सोच रहे थे, क्या करें, कैसे करें, कौन-सी युक्ति लगायें कि उनका कुछ बिगाड़ सकें, उनके रहते राजा वश में नहीं हो सकता और राजा वश में नहीं तो कार्य की सिद्धि नहीं। चारों मंत्री (बलि, नमुचि, प्रह्लाद, बृहस्पति) 10 बजे के बाद सूने मार्ग से तलवार लेकर मुनि हत्या के लिए जाते हैं और रास्ते में ही वो मुनिराज दिख जाते हैं, जिनके कारण से उनका अपमान हुआ था और वे सोचते हैं, चलो अच्छा हुआ हमारा द्वेषी मिल गया तो अब सबको क्यों मारूँ, इसी ने तो हमारा सबके बीच में अपमान किया था, इसी को मारते हैं और आपस में कहते हैं कि पहले तलवार कौन चलाए क्योंकि यह तो सभी धर्म वाले जानते हैं कि साधु हत्या सबसे बड़ा पाप है। इस पाप का फल निश्चित नरक है। यह जानते हुए भी कि यह पाप है फिर भी मान कषाय कहती है कि मारो आत्मा कहती पाप है, मन कहता नहीं बदला लेना है, प्रतिशोध की अग्नि जो मान से झुलस रही थी, कह रही थी मारो, लेकिन अब सबसे पहले कौन तलवार चलाए और सलाह करते हैं। एक साथ चलाएँ सभी को पाप बराबर लगेगा और जैसे ही तलवार चलाते हैं और नगर रक्षक देव उनको वैसा का वैसा ही कीलित कर देता है। न हिल सकते हैं न बोल सकते हैं, जैसे स्टेच्यु हो। रात्रि व्यतीत होती जा रही थी। वो भागने की भी सोच रहे थे, लेकिन भाग नहीं सकते थे, मनुष्य की शक्ति के आगे देवी शक्ति अधिक होती है। किसी से या आपस में भी कुछ कह भी नहीं सकते थे। और सुबह हो गई, लोग बाहर जाने लगे थे, जो व्यक्ति समय पर खाता है, जाता है, सोता है तो कभी बीमार नहीं होता है। लोग देखते हैं कि ये ऐसे क्यों खड़े हैं और मुनिराज ध्यानस्थ हैं, ये जीवित हैं, लेकिन इस मुद्रा में क्यों खड़े हैं, पास में जाकर देखा तो समझ में आया कि ये तो कीलित हो गये हैं लगता है महाराज

को मारने आये थे। साढ़े पाँच -छह बजे तक पूरे गाँव में हल्ला हो गया कि चारों मंत्री जो महाराज से हार गये थे, उनको मारने गये थे तो कीलित हो गए हैं। कोई कह रहा था अच्छा हुआ। ऐसे लोगों को तो सजा मिलनी ही चाहिए, कोई कह रहा था ये कैसे हैं। इन्होंने ऐसा कार्य क्यों किया आदि। नाना प्रकार की बातें कर रहे थे। अब नाना भाव, नाना कर्म, कर्म के उदय से अलग-अलग परिणति है, भावों की और जो कर्मोदय में माध्यस्थ रहता है तो कल्याण कर लेता है और सूचना राजा तक पहुँच जाती है, राजा वहाँ आकर देखता है, मुनि को नमस्कार किया और मंत्रियों को मृत्युदण्ड सुना दिया। उन मंत्रियों को शर्म भी आ रही थी, लेकिन अब करें क्या? तभी महाराज का ध्यान पूरा हुआ उपसर्ग दूर हुआ जान, मुनि-नगर रक्षक देव से कहते हैं, इन्हें क्षमा कर दो, राजा कहता, नहीं महाराज, इनको तो शूली की सजा मिलनी चाहिए। लेकिन क्षमामूर्ति मुनिराज ने क्षमा करवा दिया, लेकिन फिर भी राजा ने कहा कि इस दूष्कृत्य की सजा तो मिलनी ही चाहिए और उनको देश निकाला दे दिया। उनका काला मुँह करके सिर मुड़ाकर गधे पर बैठाकर देश से निकाल दिया। सारे नगर में चर्चा मुनि हत्या का प्रयास किया था, इसीलिए ऐसी दशा हुई। चारों ही चलते-चलते भटकते-भटकते हस्तिनागपुर पहुँच जाते हैं। उधर मुनि जाकर गुरु को पूरी बात बताते हैं तो गुरु संतुष्ट होते हैं और विहार हो जाता है।

हस्तिनागपुर ऐतिहासिक नगरी, तीर्थंकरों की जन्मस्थली, पाण्डवों की कर्मस्थली, वहीं पर राजा महापद्म का बेटा पद्मराज का राज्य था, उनके छोटे भाई ने अपने पिताजी के साथ दीक्षा ले ली थी। बड़ा भाई राज्य कर रहा था और छोटा भाई दीक्षा लेकर उग्र तपस्या कर रहा था और तपस्या से उन्हें विशेष ऋद्धि/शक्ति प्राप्त हो गई थी। इधर वे चारों मंत्री हस्तिनागपुर में पहुँचकर अपनी क्रियाओं से, चतुराई से राजा के विश्वास का पात्र बन जाते हैं।

एक दिन राजा पद्मरथ कहता है कि जो राजा सिंहरथ को पकड़कर ले आयेगा, उसको इच्छित वर मिलेगा क्योंकि वो सिंहरथ उसे बार-बार परेशान करता था। वे साहस से, चतुराई से उसे बाँधकर ले आते हैं। राजा उनसे बड़ा प्रसन्न होकर वर के लिए कहता है तो वो कहते हैं, अभी नहीं समय आने पर ले लेंगे। राजा वचन बद्ध हो जाता है। समय निकलता गया और वे ही 700

मुनिराज विहार करते-करते हस्तिनागपुर के उद्यान में पहुँच जाते हैं। सूचना मिलते ही राजा बहुत प्रसन्न होता है। मुनि के दर्शन करके उनसे चतुर्मास की प्रार्थना करते हैं और महाराज बगीचे में ही वर्षायोग की स्थापना कर लेते हैं। जैसे ही वे चारों सुनते हैं, महाराज रुके हैं, 700 हैं, हो सकता है वे ही हों और कहीं वो हमारी पोल न खोल दें। यहाँ तो जनता, राजा सभी हमसे प्रसन्न हैं और इनमें से किसी ने भी किसी को बता दिया कि ये साधु हत्या करना चाहते थे, पापी हैं तो क्या होगा कुछ न कुछ उपाय करके इन सभी को मार देना चाहिए उपाय सोचते हैं और अपने दिए हुए वचन के अनुसार राजा से सात दिन के लिए राज्य माँग लेते हैं। यद्यपि राज्य देने की कोई वस्तु नहीं है, फिर भी वचन बद्धता थी। इस वचन के कारण ही रामायण बन गई। वचन तो सत्यवादी ही देते हैं। झूठ बोलने वाले को तो वचन का कोई महत्त्व नहीं। साधु को कभी वचन नहीं देना चाहिए, साधु को दिया वचन भंग कर दिया तो महाभंगी बनते हैं। नहीं तो आजकल चतुरता से वचन देकर छलकपट कर लेते हैं। साधु कभी भी जबर्दस्ती नियम नहीं देते हैं। श्रद्धा है तो नियम निभायेगा। प्राण जाय पर वचन नहीं जाय वालों का इतिहास ही शास्त्रों में लिखा जाता है। उन चारों ने भी 7 दिन का राज्य लेकर घोषणा करवा दी कि हम एक व्रत के उद्यापन में धर्म का अनुष्ठान करेंगे, यज्ञ करेंगे किमिच्छिक दान करेंगे, जिसको जो चाहिए वो ले जा सकते हैं। सात दिन का राज्य था, राज खजाना लुटाने में लग गये थे। लेकिन प्रजा समझदार थी, उसने अपने राज्य की सम्पत्ति का दुरुपयोग नहीं किया और जिसको जो आवश्यकता थी उतना ही लिया, अनावश्यक नहीं लिया। प्रजा को प्रेम था राजा से, इसीलिए राज्य की सुरक्षा सम्पत्ति की सुरक्षा की सोच ली। उधर उन्होंने बगीचे के चारों तरफ खाई/कुण्ड बनवाकर उनमें गंदी-गंदी सामग्री डालकर आग लगा दी। माँस, हड्डी, चमड़ा आदि डालकर धुनि दी जा रही थी, जैसे जानकारी हुई कि उपसर्ग आ गया है तो सभी मुनिराज ध्यान में लीन हो गये, अविचार सल्लेखना ले ली 3-4 दिन हो गए, फिर भी बार-बार वहीं सामग्री डाली जा रही थी, श्रावक परेशान थे, उधर राजा पद्मरथ भी परेशान था। लेकिन श्रावक कर क्या सकते थे। राजा ही कर रहा था, इसीलिए कुछ नहीं कर सकते थे, धर्म संकट में फँसा था। मिथिला

नगरी में एक पर्वत पर सारचन्द्र आचार्य ध्यान में बैठे थे और एकाएक अर्धरात्रि में उनको श्रवण नक्षत्र कांपते दिखा, उसको कांपते देख रात्रि में मौन होते हुए भी उनके मुख से हा-हा निकल गया, उनके पास ही क्षुल्लक पुष्पदंत बैठे थे, उन्होंने ऐसी आवाज सुनी तो पूछा क्या हुआ/हो गया जो रात्रि में आपके मुख से ऐसे वेदनाजन्य शब्द निकले, तब आचार्य बताते हैं। हस्तिनागपुर में 700 मुनियों पर घोर उपसर्ग हो रहा /कष्ट दिया जा रहा है। तब क्षुल्लकश्री रक्षा का उपाय पूछते हैं, उपसर्ग दूर कैसे होगा। तब आचार्य कहते हैं कि धरणीधर पर्वत पर विष्णुकुमार मुनि ध्यान कर रहे हैं, उन्हें विक्रिया ऋद्धि उत्पन्न हुई है लेकिन उन्हें ज्ञात नहीं है, वो जाकर उपसर्ग दूर कर सकते हैं और क्षुल्लकजी विद्या के बल से रात में ही वहाँ पहुँच जाते हैं। क्योंकि क्षुल्लकजी श्रावक हैं। श्रावक के पास विद्याएँ रहती हैं। विद्याधर जब दीक्षा लेते हैं, तो मुनि दीक्षा में तो सारी विद्याएँ छोड़ना पड़ती है, लेकिन क्षुल्लक, ऐलक कुछ विद्याएँ अपने पास रख सकते हैं और वो क्षुल्लकजी भी विद्याधर थे, उन्होंने धरणीधर पर्वत पर पहुँचकर विष्णुकुमार मुनि को समाचार दिए कि सारचंद्र आचार्य ने कहा है कि आपको ऋद्धि उत्पन्न हुई है और आप 700 मुनियों के उपसर्ग को दूर कर सकते हैं, जल्दी कीजिए और विष्णुकुमार मुनि ने परीक्षण किया अपना हाथ फैलाया तो वह सुमेरु पर्वत को छू गया तब उन्होंने वात्सल्य भाव से ओतप्रोत हो, पिच्छी कमण्डलु दिगम्बर मुद्रा छोड़कर 52 अंगुल का ब्राह्मण का रूप बनाया और हस्तिनागपुर पहुँच गये, दान माँगा, ब्राह्मण को देखते ही राजा ने अरे ब्राह्मण को दान देना तो श्रेयस्कर है यद्यपि सच्चा ब्राह्मण तो वो है जो ब्रह्म में रमण करता है, वो है मुनिराज! फिर उन्होंने कहा मुझे मात्र तीन पग भूमि दे दो, तब वह राजा हँसने लगा। अरे ब्राह्मण! तीन पग भूमि से क्या होगा, रह भी नहीं पाओगे, तुम तो तीन गाँव माँग लो तो भी दे सकता हूँ, वह ब्राह्मण कहता, नहीं मात्र 3 पग भूमि, वो भी मेरे अपने पैर से नापकर चाहिए, देना हो तो दे दो, नहीं तो मैं जाता हूँ, वो कहता नहीं जाओ, यदि तुम्हें इतना ही लेना है तो ले लो और उन्होंने अपना एक पैर रखा तो मानुषोत्तर पर्वत पर दूसरा पैर रखा तो सुमेरु पर्वत पर अब तीसरा कहाँ रखूँ? बोलो राजा जल्दी बताओ वह राजा कहता है, मेरे पीठ पर ही रख लो, नहीं तो दान पूरा नहीं होगा। तीसरा पैर

उसकी पीठ पर रखा रखते ही दब जाता है, मरण सा होने लगता है। वह रक्षा की भीख माँगने लगता है, त्राहि माम्, त्राहि माम् चिल्लाता है। विष्णुकुमार मुनि कहते हैं। मूर्ख इतना बड़ा पाप कर रहा है। जिसका फल तो मौत ही है। फिर वो कहता है, मैं आज के बाद कभी उपसर्ग नहीं करूँगा और उन्होंने अपना पैर उठा लिया, उपसर्ग दूर करवा दिया। सभी श्रावक खुश हो गए थे (खुशी से) हर्षाश्रु बह रहे थे। पुरुष वर्ग अपने-अपने हाथों में गरम पानी, घी, तेल, अमृत धारा, नैपकिन बगैरह लेकर मुनिराजों की सेवा करने जा रहे थे। कोई पाटा लगा रहे थे तो कोई चटाई बिछा रहे थे, कोई गीली नैपकिन से मुनियों के अंगोपांगों को पोछ रहे थे, कोई मालिश कर रहे थे कोई पट्टी लगा रहे थे। इस प्रकार सभी अपनी अपनी यथाशक्ति योग्य वैयावृत्ति करने का प्रयास कर रहे थे। इधर महिलाएँ आहार सामग्री तैयार कर रही थीं। 7 दिन के उपसर्ग के बाद मुनिराज आहार चर्या को निकलेंगे, उनको योग्य आहार करवाना चाहिए। विचार विमर्श कर रही थीं और बुद्धिमती महिलाएँ बिया की खीर बनाती हैं, उकाली बनाती हैं ताकि खाने में भी सरल और सुपाच्य रहेगी और सभी ने स्वास्थ्य के अनुकूल आहार बनाकर शुद्धि का पानी भेज दिया। पड़गाहन करने खड़े हो गये, पूरे नगर में प्रत्येक श्रावक पड़गाहन कर रहा था। महाराज चर्या पर निकलते हैं, सभी निकले थे, फिर भी श्रावकों के चौके खाली रह गये थे। जिनके खाली थे, उन्होंने दातारों को खिला दिया। इस पर भी खाली रह गया तो दीवाल पर मुनि की आकृति बनाकर आहारदान का कार्य किया था। तभी से आज तक विशेष रूप से दक्षिण में रक्षाबंधन के दिन आकृति बनाकर महिलाएँ आहार देने की कल्पना करती हैं और उस दिन को याद करती हैं। उपसर्ग दूर हो जाने पर विष्णुकुमार वापस मुनि दीक्षा ले लेते हैं और वो चारों मंत्री भी प्रायश्चित लेकर श्रावक के यथोचित व्रत अंगीकार करते हैं। तभी से ये निरंतर वात्सल्य पर्व के रूप में मनाते आ रहे हैं। आज भी लोग रक्षाबंधन के दिन विशेष रूप से पड़गाहन करता है, वैसे तो श्रावक को रोज-रोज पड़गाहन करना चाहिए। चाहे साधु हों या न हों और जो रोज-रोज पड़गाहन करता है, साधु आये न आये तो तीन कम नौ करोड़ मुनिराजों को आहार दान का पुण्य मिलता है। **वात्सल्य का प्रतीक यह रक्षाबंधन पर्व है।**